अप्रैल ९४
मूल्य-१५/-
मंत्र-तंत्र-यंत्र
विज्ञान
ज्योतिष
जो घटनाएं अभी तक नहीं घटी, वे अगले वर्षों में घटने जा रही हैं, तूफानी आश्चर्य जनक परिवर्तन
- डॉ. श्रीमाली

सुनी हो मैंने गुरु आवन की आवाज

इलाहाबाद

डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली जन्मोत्सव

अभी - अभी बीती होली में उड़े गुलाल के रंगों से, देश - विदेश से आने वाले साधकों के पत्रों से, आपके मन में गुरुदेव के प्रति उमड़ रही मुस्कराहटों से, उमंगों से !

क्योंकि यह हीरक जयन्ती वर्ष - उत्सव वर्ष की पहली घटना है और आपको तो इस पर्व से आरम्भ कर पूरे वर्ष भर के एक - एक उत्सव में साथ रहना है। मैंने तो सुन ली गुरुदेव के आने की आवाज! क्या आपने भी सुना? क्योंकि अब तो यह गूंज संगीत बन कर पूरे विश्व में फैल गयी है। यह निमन्त्रण भी है और पूज्य गुरुदेव की अपने समस्त विश्व में फैले शिष्यों को आज्ञा भी कि उन्हें उपस्थित होना ही है।

सभी सीमाएं तोड़ कर आते, नर्तन करते, आपकी मंगल ध्वनि सुनने के लिए हम प्रतीक्षा में हैं।

शिविर शुल्क - ९९०/-

आयोजन स्थल : मिन्टो पार्क, इलाहाबाद

आजय कुमार उत्तम "निखिल"
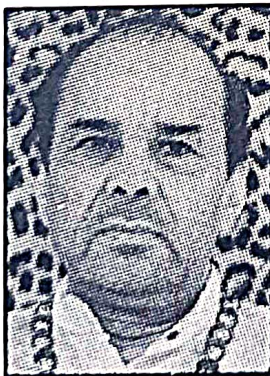
आनो भद्रा : क्रतवो यन्तु विश्वतः
मानव जीवन की सर्वतोन्मुखी उन्नति प्रगति और
भारतीय गूढ़ विद्याओं से समन्वित मासिक

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान

प्रार्थना

ध्येयं ध्येयं पुनरपि पुनः भावगम्यं मनोज्ञं,
गेयं गेयं पुनरपि पुनः चित्तचैतन्य कान्तं।
धन्यं धन्यं पुनरपि पुनः सर्व मांगल्य सम्पत्,
ध्येयं गेयं च धन्यं जनिभयहरं पादपद्मं त्वदीयम्।।

हे गुरुदेव! आप के चरण कमल पुनः पुनः ध्यान करने योग्य, हृदय के विनम्र भावों से ज्ञेय एवं सुन्दरतम हैं। सदैव स्तुत्य, शिष्यों के चित्त को चैतन्य करने वाले तथा कमनीय हैं। वे चरणकमल साधकों को नित्य धन्यतम करने वाले तथा समस्त मंगलमय सम्पदा से परिपूर्ण हैं। जन्म-मृत्यु के भय को हरने वाले, पावनतम वे चरण मेरे हृदय में सभी श्रेष्ठ भावों के साथ समाहित हों, ऐसी ही कामना है।

नियम

अनुक्रमणिका

साधना

विविध

स्तम्भ

रहस्य रोमांच, सौन्दर्य

पाठकों के पत्र

✿ मार्च का अंक रोचक कथाओं की दृष्टि से भरपूर रहा और मनोरंजन प्रदान करने मे भी समर्थ था। पत्रिका की कथाओं में साधनात्मक ज्ञान व कोई सन्देश छुपा होता है, जिसका अनुभव मैंने व मेरे साथ के कई साधकों ने किया।

सुरेश पासलकर,
कोटा

✿ फरवरी के अंक में प्रकाशित लेख **"जहां के पत्थर भी उड़ते है"** अत्यन्त रोमान्चक लेख है। मेरा केदारनाथ जाते समय वह स्थान देखा हुआ है और सचमुच वहां के विशाल पत्थर जिस तरह से इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, उसके पीछे यही रहस्य होगा।

जे० पद्मनाभन,
विखाखापट्टनम

✿ मैं दिसम्बर ९२ से आपकी पत्रिका का सदस्य हूं। आप जितना भारतीय संस्कृति अर्थात् ज्योतिष आदि को बढ़ाने और उसके विज्ञान पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं वह सराहनीय है। मैंने जोधपुर से कुछ साधना सामग्री मंगाई थी जो समय-समय पर काफी मददगार साबित हुई।

मनोज त्यागी,
गाजियाबाद

✿ इस पत्रिका ने मुझमें जीने की तमन्ना को चर्मोत्कर्ष तक पहुंचा दिया। इसकी सदस्यता से पहले मैं निराशा अनुभव कर रहा था किन्तु इस पत्रिका के चलते मुझको नव जीवन का संचार हुआ। इसके लिए मैं पत्रिका का दिल से आभारी हूं।

श्यामकुमार, ,बेगूसराय

✿ मैं आपकी पत्रिका का नवीन पाठक हूं। मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्याय में पढ़ता हूं। मुस्लिम समुदाय में कलमा या किसी आयत की सिद्धि काफी सामान्य बात है। मुझे एक बात का हमेशा अफसोस रहता था कि हिन्दू धर्म विश्व का सबसे प्राचीन धर्म है और इस धर्म में मंत्र आदि जाग्रत अवस्था में क्यों नहीं है, अथवा इसके ज्ञाता क्यों नहीं है। परन्तु आपका **अप्रैल १९९३ का मंत्र शक्ति विशेषांक** पढ़कर मेरी भ्रान्ति काफी दूर हुई। श्रीमान आपको जानकर अति आश्चर्य होगा कि यह अंक मुझे एक मुसलमान प्रोफेसर से प्राप्त हुआ है और उन्होंने खुद इसमें दी गई साधनाएं सम्पन्न कर मुझसे कहा कि मैं अपनी आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए यक्षिणी साधना करूं।

आशुतोष दुबे,
अलीगढ़

✿ **अशोभनीय**

पिछले चार - पांच अंकों से प्रयाग से प्रकाशित पेम्फलेट नुमा बीस-पच्चीस पेज की पत्रिका पूज्य गुरुदेव और **मंत्र तंत्र यंत्र विज्ञान** पत्रिका के बारे में ऊटपटांग छाप रही है, जैसे अध्यात्म और ज्ञान का ठेका उन्होंने ही ले रखा हो, आप -अपनी पत्रिका में उनकी बेशर्म हरकतों के बारे में जवाब क्यों नहीं लिखते?

एस. के. मिश्रा
प्रयाग

"पत्रिका का एक - एक पन्ना कीमती है, उसमें ऐसे कूड़े कचरे को स्थान देना पत्रिका को गंदा करना है, उनके पास फालतू पत्रिका के पेज हैं और इसके माध्यम से वे पब्लिसिटी चाहते हैं, उन्हें करने दे, हमारे पास इतना समय नहीं है कि बेकार की बकवास का जवाब दिया जाए।

- सम्पादक

✿ आपका मासिक पढ़ा पढ़ने के बाद कुछ ऐसा महसूस हुआ कि अपनी समस्या का हल मिल रहा हो। मैं सिद्धिप्रद गुटिका का लाभ लेना चाहता हूं।

अनिल देशमुख एल्कीकर,
अमरावती

✿ मुझे **'मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान'** पत्रिका बहुत ज्ञानवर्धक लगी क्या गृहस्थ व्यक्ति भी आध्यात्मिकता की गहराइयों अर्थात् सिद्धियों का प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं?

हरीश 'धीरेन्द्र',
कानपुर

— पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य ही यही है कि समाज के सभी वर्गों के सदस्य इसका लाभ प्राप्त कर सकें और जीवन को पूर्णता दे सकें। "गृहस्थ" स्वतः ही इस परिभाषा के अन्तर्गत आ जाते हैं।

- सहा० सम्पादक

✿ मुझे यह पत्रिका रोचक लगी मेरा अनुरोध है कि आप **अगस्त माह (१९९३)** के विशेषांक की तरह योग व योग से सम्बन्धित पूरी जानकारी दें तथा **अनंग रति नमस्कार** जैसा प्रयोग युवा वर्ग के लिए निरन्तर देते रहें।

महावीर सोमानी,
भीलवाड़ा

दिनांक : ११-१२-१३ अप्रैल को **बम्बई** में निम्न स्थान पर **नवरात्रि शिविर पूज्य गुरुदेव डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली जी** के सान्निध्य में सम्पन्न होने जा रहा है-

सम्पर्क

के.टी. वाडी, गोहिलवारा, दसा सीमाली सेवा संघ हॉल, होली पाड़ा, पैराडाइज स्कूल के पास
डी. जी. नगर, अम्बाडी रोड, वसाई रोड (पश्चिम), ठाणे (महाराष्ट्र)-४०१२०२

गणेश बट्टाणी,	फोन	:	८०५७११०
ए.सी.पुरोहित,	फोन	:	७१२२३३०
गणेश सिंह	फोन	:	९११०१९०

सम्पादकीय
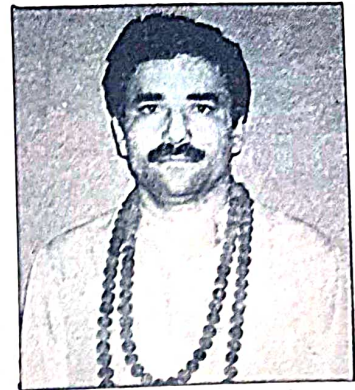
ऐई तो तोमार प्रेमे

"मेरा सिर तेरे चरणों तक झुका, ओ मेरे प्रभु! मैं जानता हूं. यह तेरा ही प्रेम संकेत है"

– रविन्द्रनाथ टैगोर

आज मैंने भी ऊंचे और ऊंचे तक दृष्टि उठाकर देखा, आज मुझे लगा कि मेरा छोटा सा 'मैं' उठता हुआ इन विशाल वृक्षों के शिखर पर से भी उठ उस अनन्त में लीन हो गया, मेरा हृदय तृप्त हो गया, अन्दर से मेरा मन गुरु चरणों में नत हो गया, आज मुझे कोई साधना नहीं करनी पड़ी, आज मुझे किसी बन्दना की पंक्तियां नहीं दोहरानी पड़ीं, सन्ध्या और आरती भी नहीं करनी पड़ी, मेरा गुरु-दर्शन हो गया, मुझे सर्वत्र गुरुदेव ही आभासित हो उठे।

अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों से उठता हुआ मन जब विराट में लीन हो कर नत हो जाए, तभी तो जीवन की और साधना की सार्थकता है। तब साधनाएं आवश्यक रहती भी हैं और नहीं भी, क्योंकि वे ही माध्यम बनी थीं और अब उन्हें आहिस्ते से एक ओर धर दिया– **ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।**

तन ही नहीं, जो भी कुछ इस निर्मल आत्मा पर आवरण स्वरूप पड़ा था वह सब 'चदरिया' ही था और इन्हीं 'चदरियों' को हटा देना, आतम खोल भेंट कर गुरु से मिल लेना ही सच्ची गुरु -साधना है। जहां ऐसी गुरु -साधना है फिर वहीं सभी साधनाएं हैं।

वहीं शक्ति साधना भी है। मां भगवती जगदम्बा के आह्लाद का पर्व चैत्र नवरात्रि भी इसी माह में पड़ रहा है। मां की साधना सम्पन्न की या गुरु- साधना सम्पन्न की, अन्तर कोई विशेष नहीं है। अबोध शिशु के मन की तरंगें हैं कि वह कभी मां की गोद में दुबका तो कभी पिता के चरणों में लिपट गया। साधकत्व हो या शिष्यत्व सभी कुछ एक अबोध शिशुत्व पर आकर समाप्त हो रहा है। प्रारम्भ में भी हम निर्मल शिशु थे और अन्तिम परिणति भी उसी अबोध निर्मल शिशुत्व में होनी अपरिहार्य है।

यह स्थिति सहज ही आ सके, क्योंकि शिशु असहज नहीं होता। वह बलात् या बनावट से कुछ नहीं करता। हमारे लिए दोनों ही महत्वपूर्ण हैं– **मां भगवती जगदम्बा भी और पूज्यपाद गुरुदेव भी। भेद तो बुद्धि करती है, प्रेम की दृष्टि में कोई भेद नहीं होता।**

नवरात्रि का पर्व शक्ति का पर्व भी है और नये विक्रमी सम्वत् के आरम्भ का भी। आप सभी को यह ***नूतन सम्वत्, मां के ममत्व और गुरु के अभय से युक्त प्राप्त हो,*** यही हमारी प्रभु - चरणों में सहृदय कामना है।

आपका

नन्दकिशोर श्रीमाली

घट घट गोरख घट घट मीन

एक घट में दो? यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि वहीं गुरु हैं वहीं शिष्य, दोनों में कोई दूरी ही नहीं, एक ही घट में क्रियाशील, आनन्द के महासागर में विलुप्त, आकण्ठ निमग्न तैरते हुए और रसाप्लावित होते हुए, और गुरु कहीं से आए नहीं, गुरु ने प्रवेश नहीं किया, बस हुआ यह कि जो गुरुदेव आत्मस्थ थे उनकी पहिचान हो गई, उनसे परिचय हो गया, क्षण-क्षण का साथ हो गया, एक-एक पल बात करने की कला जान ली, अपनी कहने की और उनके सुनने की शैली सीख ली, रूठना भी सीख लिया और जिद करना भी, मनुहारें भी कर लीं और समझना- समझाना भी – **यही प्रेम है।**

कोई इसमें कभी भी विलुप्त नहीं होगी, क्योंकि एक ही घट में जो दोनों को रहना है। **दूर वह रह भी कैसे सकता है, उसने तो अपना अस्तित्व ही नहीं माना, कि मैं अपने शिष्य के विना कुछ हूं। यही मीन की विशेषता है, यही गुरुदेव की विशेषता है।** वार्तालाप भी आवश्यक नहीं, बोल कर कुछ कहना भी आवश्यक नहीं। कहीं जाने की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि **''जाके पिव परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजे पाती। मोरे पिव मोरे हिय बसत हैं, में कहूं आती न जाती!''** दूरियां समाप्त हो जाती हैं और विराट पथ पर चलने के लिए कोई चिर संगी मिल जाता है, कोई सखा वन जाता है और बन्धु भी, क्योंकि यह पथ सामान्य से कहीं ज्यादा लम्बा है, सामान्य से ज्यादा कठिनाइयों से भरा है, सामान्य से ज्यादा कांटे इस पर बिछे हैं और पग-पग पर ठोकरें भी तो। **आत्मस्थ गुरु जाग्रत हुआ नहीं कि एक-एक क्षण पर ठोकरें मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं, लेकिन उन ठोकरों की पीड़ा में भी सुख है,** जीवन मधुर तन्द्रा में भी सोते-सोते गुजर जाता है, लेकिन उस व्यामोह से भरी नींद के पश्चात् उदासी ही रहती है। इसमें ऐसा नहीं है इसमें चिरसंग है और नित्य संग होने का उत्सव है, बिना किसी प्रदर्शन के, बिना किसी को कहे और मौन भी बहुत कुछ कहता ही है यदि मौन की भाषा समझी हो, **संसार का सर्वश्रेष्ठ वार्तालाप, प्रेम की सबसे मधुर बातें मौन से ही होती हैं।**
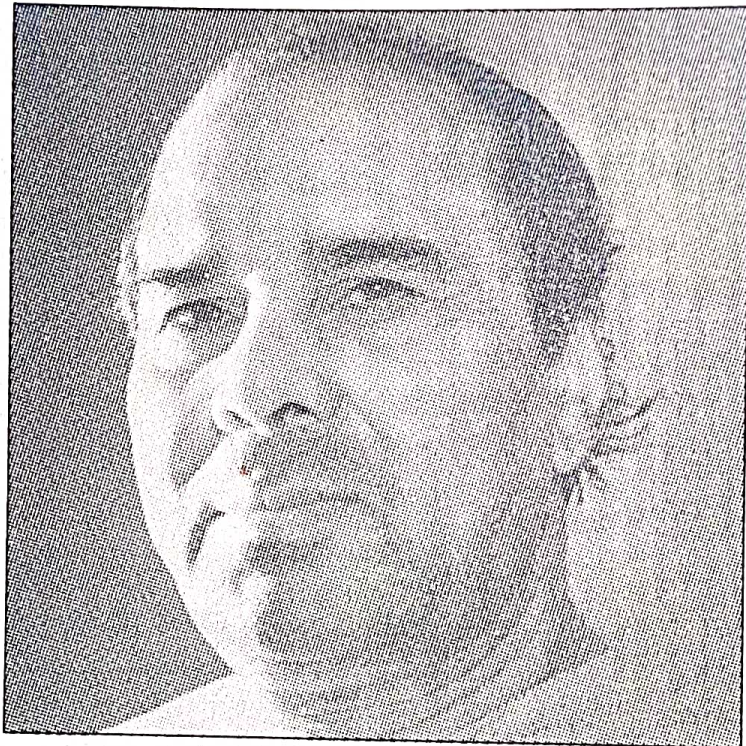
> **सुणि गुणवंता सुणि बुधिवतां**
> **अनन्त सिधा की वाणी**
> **सीस नवावत सद्गुरु मिलिया**
> **जागत रैणि बिहाणी**

गुरु नानक देव एक बार अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे और कुछ दूर पर ही एक प्रसिद्ध सूफी सन्त भी ठहरे

थे, दोनों के शिष्यों के मन में विचार आया कि यदि ऐसे दो श्रेष्ठ विद्वान आपस में वार्तालाप करें तो उनके सत्संग से हमें अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होगा। प्रयास कर दोनों के शिष्यों ने उनकी भेंट कराई, गुरु नानक देव जी मौन बैठे रहे, उन सूफी सन्त के चेहरे को देखकर आह्लादित होते रहे और वे सूफी सन्त भी मन्द मुस्कान से उन्हें निहारते रहे, एक घंटे के पश्चात् गुरु नानक देव जी ने कहा ... **आपने कितनी सुन्दर बातें कहीं, प्रत्युत्तर में वे सूफी सन्त भी बोले . . .आपका बयान भी तो बेमिसाल था!**

सन्तों की भाषा ऐसी ही होती है और इसी से ऐसे व्यक्तित्व बहुत कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह जाते हैं। समाज को दिशा दे जाते हैं, जीवन की शैली सिखा जाते हैं। **पूज्यपाद गुरुदेव** ने बहुत कम कहा है, बहुत ही दुर्लभ अवसरों पर कुछ स्पष्ट रूप से बोले हैं। **कुछ कहने और प्रचारित करने की अपेक्षा उन्होंने हर घट में प्रवेश कर उसे यह बताया है कि तुम ही गोरख हो और मैं तुम्हारा मीन, अर्थात् गुरु मत्स्येन्द्रनाथ हूं।** एक-एक शिष्य को मौन बात करने की कला सिखाई है। एक-एक शिष्य को पुष्प के रूप में बदला है, उसके अन्तस में छाया विष और दुर्गन्ध दूर कर उसे एकाकी भाव से झूमते रहने की कला सिखाई है और वह भी इस झुलसते हुए रेगिस्तान जैसे समाज में। इसी से जो वे कहते हैं कि मैंने बहुत परिश्रम कर गुलाब की कलमें रोपी हैं, तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं।

और सचमुच वे शिष्य उनके पसीने की बूंदों से ही सिंचित हुए हैं, अपने गुरु के प्रतिरूप बने हैं, गोरख बने हैं व प्रहार करने की क्षमता से युक्त हुए हैं। एक अनोखी शैली दी है पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने शिष्यों को। कोमलता और तीक्ष्णता का अद्भुत समन्वय किया है उन्होंने अपने शिष्यों में। केवल शिष्य ही नहीं उन्होंने अपने प्रतिरूप ही तैयार किए हैं, जो उनके मंत्रजात पुत्र हैं, जिनकी आंखों में स्वप्न है, गुरु की चेतना है और सुगन्ध फैलाने का संकल्प। कितनी विषमता झेली है उन्होंने अपने जीवन में इसका अल्प ज्ञान ही यदि हमको हो जाए तो सारा शरीर और मन पीड़ा से दग्ध हो जाता है, **लेकिन कुछ व्यक्तित्वों में एक आशा होती है, जीवन के प्रति एक संकल्प होता है और अपना सब कुछ लुटाकर भी कुछ देने का जो भाव होता है वही व्यक्ति को विष पीने के लिए भी सक्षम बना देता है।**

माता-पिता की क्या आकांक्षा होती है? बस यही कि मेरा शिशु, मेरी सन्तान सुख प्राप्त करे। गुरु-शिष्य सम्बन्ध तो केवल इसी रूप में समझा जा सकता है। यद्यपि माता-पिता के सम्बन्ध फिर भी स्वार्थ- परक और कामना से युक्त हो सकते हैं, लेकिन गुरु के अपने शिष्यों से सम्बन्ध तो ऐसे हो ही नहीं सकते। यह कोई नई बात नहीं है, समाज गुरु - कार्यों का मूल्यांकन नहीं कर पा रहा और 'मूल्यांकन' शब्द भी एक अपूर्ण शब्द है, क्योंकि वास्तव में उनके कार्यों का मूल्यांकन तो सामान्य मनुष्य के द्वारा सम्भव ही नहीं, उनकी चेतना यदि एक बार ज्ञात हो जाए तब भी बहुत कुछ घटित हो जाएगा, व्यक्ति के मन व शरीर में, क्योंकि वह कोई सामान्य चेतना नहीं है, जीवन को झकझोर कर रख देने की क्रिया है, आग्रह करके व्यक्ति के हृदय में उतर जाने की प्रक्रिया है, इसका अर्थ तो वही समझ सकता है जिसने कभी जीवन में कुछ ऐसा प्राप्त करने का सुख जाना हो।

यह एक ऐसे अमृत का स्वाद है जिसकी सार्थकता बांटने में ही होती है, और इसी से इसकी तुलना केवल पुष्प से की जा सकती है जो अपनी सुगन्ध बिखेरता ही रहता है, अपने बीज छोड़ देता है हवा में निर्मुक्त कि वे हवा के झोंकों के साथ उड़ें और दूर-दूर तक जाकर, अलग-अलग खेतों में गिर कर पौधा बनें, सुगन्ध बिखेर दें और ऐसी ही क्रिया सम्पन्न हो रही है पूज्य गुरुदेव द्वारा शिष्य निर्मित कर, जो उन्हीं के अंश से उत्पन्न हुए, उन्हीं के बीज हैं।

गगन मण्डल में औंधा कुंआ
तहां अमृत का बासा
सगुरा होई सो भर-भर पीया
निगुरा जाए पियासा

पूज्य गुरुदेव ने इस संसार के कीचड़ में ऐसे ही कमल पुष्प विकसित किए हैं, जिनकी सुगन्ध से आज भी वातावरण स्निग्ध है, आज भी ज्ञान व साधना की लुप्त होती परम्पराएं जीवित हैं और स्पष्ट हैं। गुरु की सुगन्ध ही जिनमें प्रवहित हो रही है और शिष्य का आनन्द यह है कि गुरु चलते हैं तो शिष्य भी चलता है, गुरु बोलते हैं तो शिष्य भी बोलता है, गुरु हंसते हैं तो शिष्य भी हंसता है। खाना-पीना, उठना-बैठना सब कुछ गुरुमय हो जाता है, अपने को समाप्त करने का आनन्द आ जाता है, जो मेरा छोटा सा "मैं" था, उसको खोकर एक बड़ा "मैं" प्राप्त कर लेने का आनन्द आ जाता है, मन में तृप्ति आ जाती है।

यह एक घट की ही प्रक्रिया है, लेकिन एक बीज डालने भर की जगह देनी पड़ती है गुरु रूपी बीज को प्रवेश देने के लिए, जिससे वही बीज अपने अन्दर विषमताओं और मलिनताओं के कीचड़ में कमल बनकर सुगन्ध से भर दे। बीज तो खुद तैयार है हमारे अन्दर व्याप्त कीचड़ में पनपने के लिए, कमल बनने के लिए। कम से कम उसे अंकुरित का एक अवसर तो दें और कह सकें घट-घट गोरख, घट-घट मीन।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य के मूल्यांकन का प्रयास आज तक किया जाता रहा, किन्तु विद्वान उनकी प्रखरता और विलक्षणता का अनुमान लगा कर हतप्रभ होते रहे। अल्पायु में इतना अधिक ज्ञान - संग्रह, तेजस्विता और रचनात्मक कार्य — वे सब अलौकिक होने का प्रमाण नहीं तो और क्या है? **जिस आध्यात्मिक युग का सूत्रपात भगवान श्रीकृष्ण के काल में हुआ उसी की पूर्णता भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य ये युग में हुई। भगवान श्रीकृष्ण से आद्यशंकराचार्य तक एक सेतु है जिसके मध्य में है भगवान बुद्ध।** यह आध्यात्मिकता का सेतु है। यह अनायास नहीं रहा कि भगवान श्रीकृष्ण ने वैभव-विलास, रसमयता
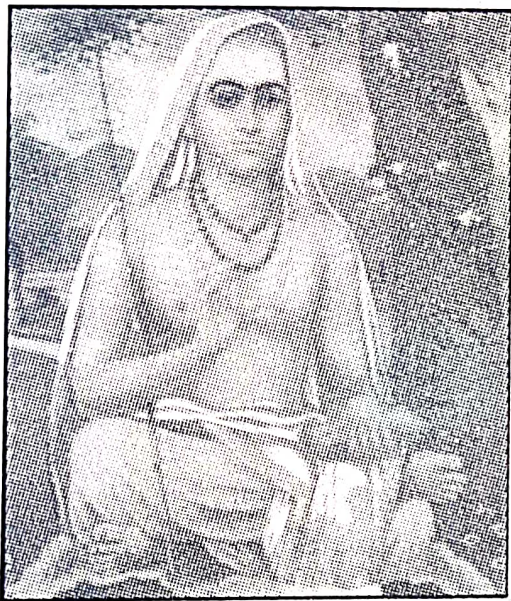
और सांस्कृतिक वातावरण के द्वारा जिस सृजन को प्रारम्भ किया, वही भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य के युग में जाकर सन्यास तत्व की प्रतिस्थापना द्वारा पूर्णत्व को प्राप्त हुआ।

आध्यात्मिकता और भौतिकता, सन्यास और गृहस्थ — ये दो ऐसी स्थितियां है जिन पर विशद व्याख्यायें दी जा चुकी हैं किन्तु आज तक व्यक्ति के मन में स्पष्ट नहीं है कि उचित क्या है? **भगवान श्री कृष्ण ने इस विसंगति और द्वन्द्व को समझा और एक दीर्घकालीन क्रमबद्ध उपाय की नींव डाली।** आकण्ठ विलासिता में डूबे समाज को अध्यात्म का उपदेश, अध्यात्म की उच्चता, ग्राह्य हो ही नहीं सकती थी। आकण्ठ श्रृंगारिकता और स्त्री-पुरुष सम्वन्धों में डूबे समाज को ध्यान का सुख बताना ठीक वैसा ही था जैसा कि बिहारी ने 'गंवई गाहक' को इत्र बेचने पर वर्णित किया है, जो इत्र लेता है और उसे चख कर फेंक देता है कि यह तो कड़वा है! आकण्ठ भौतिकता में डूबे समाज को ध्यान का महत्व किसी भी प्रकार से समझाया ही नहीं जा सकता और न वह उस निर्विचार मन तक पहुंच पाता है जहां तनाव रहितता प्राप्त हो, किन्तु यह भी सत्य है कि मानसिक संतोष केवल इसी स्थिति में पहुंच कर ही प्राप्त होता है। भोग पर आधारित मानसिकता अन्त में तृष्णा को जन्म देकर अतृप्त ही छोड़ जाती है। भोग के द्वारा व्यक्ति तृप्त हो ही नहीं सकता। तृप्ति तो अपने अन्दर उतरने पर ही प्राप्त होती है। बाह्य रूप से सुख की तलाश में भटकना ही एक हास्यास्पद स्थिति है। **जिस सुख की तलाश में बाहर भटकना पड़े वह तृप्ति देगा भी**

शंकर डिंडिम्

मात्र बत्तीस वर्ष का कुल जीवन, सम्पूर्ण भारत से कुरीतियों का विनाश, शास्त्रार्थ, विद्वानों का गर्व भन्जन, अद्वितीय ग्रंथों की रचना और सम्पूर्ण भारत को अपने पैरों से नापकर चारों कोनों पर गौरव स्मारकों का निर्माण . . .

जबकि ३२ वर्ष तक तो व्यक्ति अपने जीवन का अर्थ, अपने जीवन की उच्चता और लक्ष्य ही निर्धारित नहीं कर पाता।

युग पुरुष, भगवान शिव के ही मूर्तिमन्त स्वरूप भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य की जयन्ती पर सश्रृद्ध पुष्पांजलि प्रदान करता एक सारगर्भित लेख।

तो कैसे ? वह तो एक बिम्ब है, क्षण भर के लिया आया व चला गया और घट रीता का रीता रह गया।

भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा आरम्भ हुआ युग परिवर्तन का काल, बौद्ध काल तक आया। ध्यान, धारणा के सुखद वृक्षों की छांव के नीचे भौतिकता की चकाचौंध से घबरा उठे समाज को क्षणिक विश्राम मिला और जब तक समाज उबरता, संवरता तब तक नयी विसंगति का प्रारम्भ हो गया, जो वज्रायन के विकृत रूप में फूटी, जहां भोग और पंचमकारों का खुल कर सेवन किया गया। पुत्री, मां, भगिनी जैसी किसी भी सम्बन्ध को ठुकराते हुए केवल और केवल जुगुप्सा भरे भोग का प्रारम्भ हुआ, क्योंकि अतृप्ति शेष जो रह गई थी, मवाद से भरे-फोड़े को चीरा नहीं लगाया गया जिसकी दुःखद परिणति इस रूप में हुई।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य के व्यक्तित्व व कृतित्व ने इसी विसंगति को दूर करने का अथक प्रयास किया। **ध्यान के नाम पर फैली ऊब और तन्द्रा को उखाड़ फेंकने की युग परिवर्तनकारी प्रक्रिया प्रारम्भ की।** ध्यान व अत्यधिक संयम के विरोध में पनपे भोगवादी वज्रायन को नष्ट करने की क्रिया को पूर्ण कर सन्यास के कर्मठ जीवन को सामने रखा।

एक बार फिर ऐसा हुआ कि स्वच्छ वायु के झोंके धरा पर फैल सके, एक युग के बाद पुनः सम्भव हुआ सुदीर्घ, बलिष्ठ और गौरवर्णीय युवक गेरुए वस्त्र पहने भारत की भूमि पर यों फैल गए ज्यों प्रभात के सूर्य की स्वर्णिम आभा ही बिखर गई हो और ऐसे सूर्य आद्यशंकराचार्य की किरणों के रूप में उनके युवा सन्यासी, दुर्गन्ध और अन्धकार से भरी मानसिकताओं में प्रवेश करने के लिए उद्यत हो उठे। **समाज ने एक घुटन से ऊपर उठकर खुली हवा में सांस लेने की कला जानी और यह जाना कि भोग एवं तथाकथित ध्यान की प्रवंचना से परे हट कर भी एक सुख है जो कर्मठता का सुख है, जिसमें जीवन से जूझने का आनन्द है, कुछ प्राप्त करने का आनन्द है और उन्मुक्त हो जाने का आनन्द है।**

यह आद्यशंकराचार्य की भारत की भूमि को अप्रतिम भेंट रही। उन्होंने पुनः सन्यास धर्म की मर्यादा प्रतिष्ठित की और समाज की आंखों में उंगली डाल कर दिखाया कि एक बार इस सुख के भी साक्षीभूत बनो जो निस्पृहता का है, जिसमें दिन-प्रतिदिन की हाय-हाय, एक-एक सिक्के को जोड़कर सम्पत्ति बनाने और फिर कुछ बच्चे पैदा कर देने से अलग हटकर एक गुनगुनाहट है, तृप्ति का संगीत है और निश्चिन्तता है। पुनः ज्ञान की वह चेतना शिव स्वरूप शंकराचार्य के माध्यम से भारत की भूमि पर गंगा के समान निर्मल रूप से फैली, जो लुप्त हो चुकी थी। **ज्ञान के निर्मल अमृत को चखकर समाज ने जाना कि संगीत की मादक लहरियों और विलासिता भरे काव्य से अतिरिक्त भी कोई सुख होता है, कोई विलक्षण आनन्द होता है, जिसमें सड़ांध नहीं है।**

एक बार फिर ऐसा हुआ कि स्वच्छ वायु के झोंके इस धरा पर फैले. . .एक युग बाद पुनः सम्भव हुआ कि सुदीर्घ, बलिष्ठ व गौरवर्णीय युवक गेरुए वस्त्र पहन कर भारत की भूमि पर प्रातः के सूर्य की रश्मियों की भांति ही इधर-उधर फैल गए . . .

ठीक वही स्थितियां, वही दशाएं आज पुनः समाज के सामने उपस्थित हैं, पुनः वही विलासिता, वही लिजलिजाहट, वही सम्बन्धों को ढोने वाली बात और सच कहा जाए तो एक दैन्य फैल चुका है, जो बौद्ध धर्म के पश्चातवर्ती काल में फैला था। इसे **'दैन्य'** के अतिरिक्त कुछ कहा ही नहीं जा सकता। **जीवन का खालीपन भरने के लिए भोग-संभोग की ओर भागना, जीवन की असुरक्षा को धन एकत्र कर के समाप्त करने का प्रयास करना, यदि इन सभी के मूल में जाकर देखें तो केवल दैन्य ही दैन्य बिखरा पड़ा है।** इन चकाचौंधों और भड़कीले आवरणों से पीछे पीड़ा ही पीड़ा दिखाई पड़ेगी, जो असुरक्षा की पीड़ा है, जो अनिश्चितता की पीड़ा है, जो जीवन को अपनी इच्छानुसार न जी पाने की पीड़ा है, आधे-अधूरे रह जाने की पीड़ा है। खोखली हंसी के पीछे छिपी यह पीड़ा, चतुराई भरे वार्तालापों के पीछे छुपी यह पीड़ा, वाक्पटुता का आवरण डालने के प्रयास की पीछे छुपी यह पीड़ा न तो ध्यान से जाएगी न भोग से। यह पीड़ा समाप्त होगी तो केवल सन्यास के महत्व को पुनर्मूल्यांकित कर उसे जीवन में सम्मानपूर्वक स्थान देने से, उसे पुनर्परिभाषित करने से।

सन्यास की पुनर्परिभाषा ही आज के युग में ठीक उसी प्रकार से आवश्यक है जिस प्रकार जीवित रहने के लिए एक भरपूर श्वास। यदि ऐसा नहीं किया गया तो जीवन की एक श्रेष्ठतम अवधारणा, जीवन का सबसे सुन्दर स्वरूप पुनः रूढ़ियों में जकड़कर कुछ ऊबे, नीरस और चिड़चिड़े लोगों के साथ ही समाज की मुख्य धारा से कट कर अनुपयोगी व व्यर्थ हो जाएगा। आज

सन्यास का अर्थ यदि गेरुए वस्त्र और रुग्ण ब्रह्मचर्य तक ही सीमित कर लिया गया तो समाज एक उपलब्धि से वंचित रह जाएगा, जो विसंगति होगी। सन्यास स्वयं इस स्थिति की अनुमति नहीं देता, सन्यास का शाब्दिक विवेचन लिया जाए तो सीधा सा अर्थ निकलता है- सम + न्यास अर्थात् समता पर आकर जो कुछ भी न्यस्त कर दिया जाए, समर्पित कर दिया जाए। सन्यास का तात्पर्य है समता और कर्मठता अर्थात् ईश्वर से समता, गुरु वचनों से समता और उस स्थिति में आकर स्वयं के जीवन का न्यास कर देना, उसका एक सजीव व गतिशील ट्रस्ट बना देना, एक पकी बाली का खुलकर बिखर जाना, गुरु की इच्छा के अनुसार स्वयं को छोड़ देना, स्वयं को उनकी इच्छा के अनुरूप कार्य करने के लिए मुक्त कर देना और इसी कारण वश सन्यास के सभी स्वरूपों में **बौद्धिक सन्यास** सर्वश्रेष्ठ माना गया, क्योंकि सन्यास एक जीवन शैली से भी अधिक हृदय की आन्तरिकता है, जीवन का खुलापन है, जिसमें बासी परम्पराओं और दमित वासनाओं के कीचड़ में, अपूर्ण वासनाओं के दल-दल में दब-घुट कर सांस लेने की बाध्यता नहीं है।

सन्यास के इसी स्वरूप का विकास प्रचार- प्रसार और इसी चेतना का विस्तार इस युग की क्रांति होगी जो सामाजिक व देशिक स्थितियों में बदलाव की सही प्रक्रिया है। पूज्यपाद गुरुदेव ने सदैव इसी तथ्य पर बल दिया है कि जब तक समाज का एक-एक व्यक्ति नहीं सुधरेगा या सन्तुष्ट नहीं होगा तब तक कोई भी धार्मिकता, आध्यात्मिकता मूर्त रूप नहीं ले पायेगी। यह व्यष्टि से समष्टि की यात्रा ही सही अर्थों में सन्यास की, न्यस्त कर देने की भावना है।

जो इस भावना का मर्म समझते हों जिनके हृदय में तड़फ और चेतना हो, उन्हें इसी सन्यस्त भाव को धारण करने का यह आह्वान है, और यही पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा दी गई चेतना है। आश्चर्य है कि जिस सन्यास ने सदैव समाज में रूढ़ियां तोड़ी वही आज दब घुट कर एक कोने में सिमट गया है और स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो जीवन यापन करने को, अनेक निट्ठल्लों का उपाय बनता जा रहा है। यदि आज इस पुनर्व्याख्या को समझने का प्रयास नहीं किया गया तो समाज में यह विद्रूप और घना ही होता जाएगा।

आज की परिस्थिति में यह पुनर्व्याख्या ही उस युग पुरुष के प्रति वास्तविक पुष्पांजलि है। यही उनकी जयन्ती पर उनका पुण्य स्मरण है। इस विषम परिस्थिति में इस नूतन सन्यास भाव को व्यापक रूप देना ही आद्य शंकराचार्य की परम्परा को प्रवाह देना है। उनके चिन्तन को मूर्तरूप देना है। **एक बार फिर अत्यन्त तीव्रता से एक चक्रवात की भांति ऊपर उठना है, ज्यों एक चक्रवात में कोई एक छोटा सा तिनका भी आ जाता है तो वह ऊपर उठकर आकाश चूमने को आतुर हो जाता है, वही कार्य पुनः इस धरा पर होना है।** यह होना आवश्यक तो है ही, अवश्यम्भावी भी है। बन्धन टूटेंगे तो कुछ इधर-उधर फैलेगा ही और यह मन के बन्धन, हृदय को दबोचे हुए व्यर्थ की रूढ़ियां, व्यर्थ की परम्पराएं, मुक्त होने की इच्छा रखते हुए छद्मरूप से परिवार और समाज के कर्त्तव्य पालन करने की विवशता, एक दिन समाज को विस्फोट करने के लिए बाध्य कर ही देगी। ज्वालामुखी में लावा कहीं से पैदा नहीं होता। अन्दर जो कुछ उबलता रहता है, इस धरा के गर्भ में जो कुछ पलता रहता है वही एक दिन फूटकर निकलता है और जब लावा फूट कर निकलता है तो विध्वंस भी करता है। क्या आप जानते हैं कि वही लावा सबसे अधिक पोषक भी होता है। विद्रोह के ये स्वर समाज को हिलाकर भी रख देंगे और यही स्वर उसका नवनिर्माण भी करेंगे क्योंकि विसंगतियां अपने अन्तर्विरोध की चरम सीमा पर जो आ चुकी हैं।

आज समाज ठीक ऐसे ही क्षणों पर खड़ा है कि चिन्तन से ओतप्रोत व्यक्तित्व चारों ओर फैल जाएं। ज्ञान के, चेतना के नए और हजारों की संख्या में केन्द्र स्थापित हों। ज्ञान की निर्मल धारा संगीत-लहरियों पर हावी हो, पक्षियों के कलरव जैसी खिलखिलाहटें आएं और उन्मुक्त हंसते हुए सभी कुछ से अपने-आप को एक क्षण में मुक्त करते हुए केवल और केवल उसी विराट सत्ता का अंग बन जाने की क्रिया प्रारम्भ हो, जिसके हम अंग हैं ही। **यह सब सम्पन्न होगा तो केवल सन्यस्त भाव से अपने 'स्व' को छोड़ते हुए या यों कहूं कि गुरु के 'स्व' से अपने को जोड़ते हुए! गुरु- मार्ग की सनातन परम्परा पर चलते हुए।**

ज्ञान की महत्ता तुरन्त स्पष्ट नहीं होती लेकिन ज्ञान ही आगे बढ़कर आने वाली पीढ़ियों के लिए आधार बनता है। प्रत्येक मानव खाली भूमि का एक टुकड़ा है। इस पर कोई वृक्ष लगा दिया जाए तो वह आने वाले समय में फल भी देगा, छांव भी देगा और हर पेड़ शुरु में कमजोर सी एक टहनी भर ही होता है, लगता है व्यर्थ में भूमि को घेरे है **किन्तु यही सन्यास का आरम्भ होता है, यही आने वाली सुखद छांव की तैयारी भी है।**

शुभस्ते पंथानु . . .

ॐ न कर्मणा न प्रजायाम्नैन त्यागैनैके, अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां बिभ्राजयते यद्यतयोविशन्ति।।
वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यत् शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

मैं कहता आंखन की देखी

सन्यस्त एवं सिद्धाश्रम स्थित शिष्य भले ही दैहिक रूप से पूज्यपाद गुरुदेव से अलग हों किन्तु अन्तस से उनसे प्रतिपल जुड़े रहते हुए एक-एक क्षण की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जब पूज्य गुरुदेव पुनः उनके मध्य होंगे।

पूज्यपाद गुरुदेव की इस हीरक जयन्ती के अवसर पर जब हमने सन्यस्त शिष्यों के अनुभव व संस्मरण भी प्राप्त करने चाहे तभी एक सन्यासी शिष्य द्वारा प्रेषित ये विचार निश्चित रूप से अपनी दो टूक खरी - खरी बातों से चिन्तन के लिए बाध्य कर देंगे।
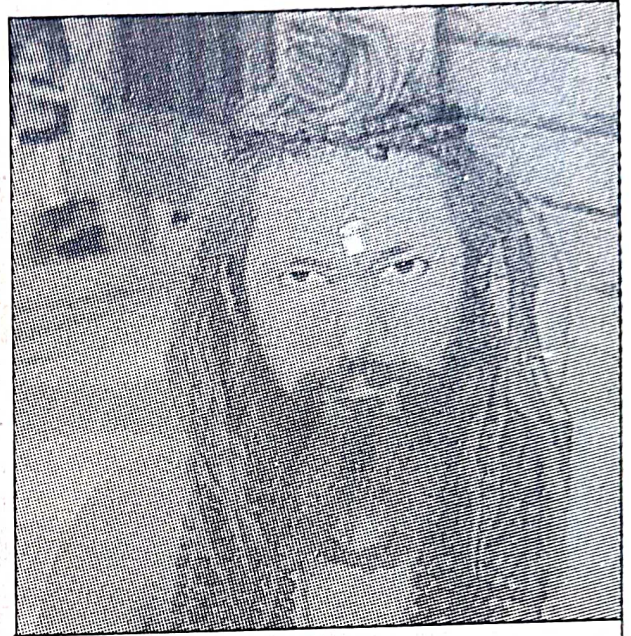
यह युग यदि खरे शब्दों में कहा जाए तो भक्ति का युग है, उसी भक्ति का जो आज से चार सौ साल पहले प्रारम्भ हुई और दासता के काल में फली - फूली। चैतन्यता के और विद्रोह के स्वर भी उठे, लेकिन समाज उसके लिए तैयार नहीं था। वे प्रयास अल्प प्रयास बनकर किताबों में सिमट गए, **क्योंकि भक्ति में एक सुख है, अपने अहं का पोषण है,** बार - बार क्षमा मांगना, बार - बार दीनता प्रकट करना, अपने को गया गुजरा बताना और पतित कहना - इसमें बड़ा सुख मिलता, क्योंकि प्रकारान्तर से व्यक्ति यही कहता है कि देखो मैं कितना निष्कपट हूं! मैं कितना सरल हूं! और यह मीठी गुदगुदी, यह छद्म आवरण अपने ऊपर डाले - डाले एक दिन वह भूल जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप तो शुद्ध, चैतन्य घन है ही। वह तो पतित था ही नहीं, लेकिन इस मीठी नींद से, उस खुमारी से व्यक्ति उबरना ही नहीं चाहता और तब साधना या चेतना जैसे शब्द बहुत बौने हो जाते हैं या अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं।

और यदि साधना का ही महत्व नहीं है तो गुरु का महत्व व्यक्ति स्वीकार भी कैसे कर सकता है? जब जीवन को उदात्त बनाने की ओर अग्रसर ही नहीं हुआ तो वह किसी पथ प्रदर्शक के अस्तित्व को स्वीकार ही कैसे कर सकता है?

क्योंकि साधना में कठिनाइयां है, झुलसन है, तपन है और पीड़ा है। बार - बार लड़खड़ा कर गिर जाने की बात है। बार - बार अपना ही घटियापन अपने सामने प्रकट होने की बात है। अपने ही अन्दर का मैल निकलकर अपने - आप को मथ देने की बात है, जबकि भक्ति में ऐसा नहीं है। **भक्ति में तो मानकर ही चला जाता है कि मैं बड़ा पवित्र हूं और पवित्र न होता तो क्यों प्रभु की प्रार्थना करता ! साधना में ऐसे छद्म आवरण नहीं चलते, वहां तो दो टूक स्पष्ट होना पड़ता है, अपने सामने भी, अपने गुरु के सामने भी।** अन्दर का मवाद दबा - दबा कर निकालना पड़ता है, जो कि बहुत ही पीड़ादायक प्रक्रिया है।

साधना का अर्थ बस आसन पर बैठ कर कुछ मालाएं घुमा लेना ही नहीं है, वह तो साधना का एक प्रकार है। **साधना अर्थात् साध लेना। एक - एक क्षण को पकड़ लेना, रात में सोना भी तो उसमें भी आधे जगते हुए सोना, खड़े पहाड़ पर नंगे पांव चलना और स्वयं को मटियामेट कर देना, जाहिर है कि इतनी पीड़ा से कोई भी नहीं गुजरना चाहता,** और नहीं गुजरना चाहता तो उसी का परिणााम हुआ यह वातावरण , यह सन्देह, ऊहापोह और भय। नहीं समझना चाहा तभी यह हुआ कि जीवन में गुरु का कोई अर्थ ही नहीं रहा, नहीं समझना चाहा तभी यह भी हुआ कि नकली और ढोंगी गुरुओं की बाढ़ आ गई जिनमें साधना छोड़कर बाकी सभी कुछ है - दम्भ है, पाखंड है, व्यभिचार है, आश्रम है, चमकीले पत्थर हैं, रेशमी गद्दियां हैं, शिष्य हैं और राजनीतिक सम्पर्क हैं! आश्चर्य है कि किस व्यामोह में जी रहा है यह पूरा का पूरा समाज या शायद ऐसा है कि समाज की मानसिकता भी एक चोर जैसी हो गई है, और चोर, दूसरे चोर को चोर कब कहता है?

ऐसे वातावरण में क्या परिचय दें गुरुदेव का? कैसे व्याख्या करें गुरु - तत्व की? जो जीवन की सबसे उच्चतम स्थिति है, जो जीवन का सबसे श्रेष्ठ स्वरूप है, जो निर्मलता की पराकाष्ठा है, जहां आनन्द का स्रोत है, जहां मौन संगीत है, हिमालय की स्निग्धता है और समुद्र की उत्तुंग लहरें हैं, उसे किस प्रकार से कहें? जमीन पर रेंगते कीड़ों को कैसे बताएं कि हिमालय कितना उच्च है, वहां कितनी शीतलता है?

गुरु तो एक उत्सव का नाम है, गुरु जीवन की धड़कन का नाम है, और जो इस शरीर में बहते रक्त की तरह ही प्रतिपल स्पन्दित हो रहे हैं इन्ही स्पन्दनों से परिचय प्राप्त करना इन्हीं स्पन्दनों के साथ धड़कना जीवन का उत्सव है, जीवन का परिचय है और विराट अर्थों में गुरुदेव से परिचय है।

आकण्ठ छद्म में डूब गए, विलासिता में रच-पच गए लोगों को यदि गुरु का परिचय दिया भी जाए तो वे बस यही कह सकते हैं कि यह स्व - प्रचार की ही चेष्टा है, और उनका कहना भी गलत नहीं है क्योंकि वे इससे अधिक सोच भी नहीं सकते। उन्हें पता ही नहीं कि सिंह किस प्रकार से झपट्टा मारकर एक अत्यन्त गौरव और गर्व के साथ जीता है, **जंगल का राजा कहलाता है। छिछड़ों की नोचा खसोटी, तो श्वान के जीवन का अंग होता है।**

पूज्यपाद गुरुदेव की इस हीरक जयन्ती वर्ष के अवसर पर, जब मुझसे कहा गया कि मैं उनसे सम्बन्धित संस्मरण भेजूं तो मैं एक शून्य में खो गया, क्योंकि जितना कुछ उन्होंने बोलकर नहीं कहा, उतना बिना बोले कहा है। जितना उन्होंने प्रवचनों में नहीं कहा है, उतना उनके समीप बैठकर, उनके पवित्र श्री विग्रह की निर्मलता से, उनकी तपोमयता से समझ में आ गया है। **अब उन क्षणों को मैं शब्दों में बांधू भी तो कैसे? और जो नहीं बंध पा रहा है वही उनका गुरुत्व है।** वही यथार्थ में जीवन की जानने योग्य वस्तु है। पूज्य गुरुदेव के पास बैठने पर मुझे गीता का वह अंश याद आता है, जहां भगवान श्रीकृष्ण जब अपने व्यक्तित्व को नहीं समझा पाते तो वे कहते हैं कि अर्जुन तू ये समझ ले वृक्षों में वट - वृक्ष मैं हूं, गाय में कामधेनु मैं हूं, हाथियों में ऐरावत मैं हूं और नदियों में गंगा भी मैं ही हूं। ऐसी स्थिति में प्रतीक और रूपक के माध्यम से ही व्यक्तित्व को कहने का कुछ प्रयास किया जा सकता है और तब कभी ज्योतिष मर्मज्ञ के माध्यम से कभी तंत्र वेत्ता के माध्यम से कभी आयुर्वेदज्ञ के माध्यम से एक प्रयास किया जाता है कि पूज्य गुरुदेव का व्यक्तित्व कुछ स्पष्ट हो। जब कि न तो वे तंत्रज्ञ है, न मंत्रज्ञ, न आयुर्वेदज्ञ, न ज्योतिषी, इन सभी से होते हुए वे उस परम मौन में अवस्थित है जिसे वेदों ने **'नेति - नेति'** कहा,

जितना उन्होंने प्रवचनों में नहीं कहा है उतना उनके समीप बैठकर उनके पास से आती मधुर लहरियों से समझ में आ गया है!

अब उन क्षणों को शब्दों में बांधू भी तो कैसे? और जो नहीं बंध पा रहा वही तो उनका गुरुत्व है, वही यथार्थ में जीवन की जानने योग्य वस्तु है. . .

मेरा हृदय चीख - चीख कर पूछता है कि आप ने अपनी इस भौतिक देह में उनसठ अमूल्य वर्ष व्यतीत किए किन्तु आपको आलोचना और कुतर्क के अलावा क्या मिला?

फिर आप क्यों अपना अमूल्य समय इन्हीं के अनुरूप दिखने में व्यतीत कर रहे हैं?

बौद्धों ने **'शून्य'** कहा और शाक्तों ने **'पराज्योति'** कहा। यह अतिशयोक्ति नहीं है, यही सत्यता है, किन्तु सामान्यजन के लिए फिर - फिर बताना पड़ता है कि वे श्रेष्ठ ज्योतिषी हैं, भारतीय ज्योतिष सम्मेलन में कई - कई वर्ष तक अध्यक्ष रहे हैं। लेकिन जो स्वयं एक ज्योतिर्पिण्ड हो क्या उसका परिचय नौ ग्रह बांध सकेंगे? सभी निहारिकाएं जिसकी स्तुति में पुष्पांजलि की तरह बिखरी हों, क्या वह ज्योतिषी मात्र है? लेकिन ऐसा कहना आज के युग में अविश्वसनीय ही लगेगा। इसी का फिर यह फल है कि हम उनका परिचय इस युग में प्राप्त कर ही नहीं पा रहे। अपनी किसी एक विशिष्ट छवि की पुष्टि उनमें पाते हुए बस वहीं तक संकुचित रह जाते हैं। उससे ऊपर उठकर उस परम शांति में प्रवेश नहीं कर पाते जहां सर्वथा मौन है और यह मौन अपने अन्तस को मौन करते हुए ही ज्ञात हो सकता है। **इन्द्रियों के संस्कार से कुछ क्षण कट जाने पर जो शून्य आ जाता है वहीं से गुरु - परिचय प्रारम्भ होता है। गुरु - परिचय प्राप्त करने के पूर्व इसी मौन तक की यात्रा करनी पड़ती है। तब समझ में आता है कि एक व्यक्तित्व जो देखने में हमारी ही भांति है वह कैसे एक विराट व्यक्तित्व भी है,** आध्यात्मिकता का आधार है और जीवन की वास्तविक गति है, प्रेरणा है और अनिर्वचनीय आनन्द है।

प्रभु का परिचय हमें इसी रूप में प्राप्त हो, हम उनके सभी रूपों को प्रणाम करते हैं। मैं जानता हूं कि इन रूपों के भी अर्थ है किन्तु विनम्रता पूर्वक अपने को अत्यन्त तुच्छ रूप में रखते हुए यह भी कहता हूं गुरुदेव! यह आपका परिचय नहीं है और अब समय आ गया है कि जो आपका वास्तविक परिचय है, जो आपकी मूल चेतना है, उसका परिचय प्राप्त हो। दायरों में बांधकर और शास्त्रों में बांधकर आपको व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। यह सत्य है कि आज आपका यदि वास्तविक परिचय दिया जाएगा तो वह समाज के गले नहीं उतरेगा। लेकिन आप का विराट व्यक्तित्व आने वाले हर एक युग के लिए वर्तमान रहेगा। कोई न कोई पीढ़ी तो चैतन्यता की उस स्थिति तक पहुंचेगी जहां वह आप में निहित **'कुछ'** अनुभव कर सकेगी। आप के इस भौतिक **देह में उनसठ अमूल्य वर्ष व्यतीत हुए हैं लेकिन आपको आलोचना और कुतर्क के सिवा क्या मिला?** घटियापन और विष के सिवा शिष्यों से क्या मिला? फिर आप क्यों अपना अमूल्य समय इन्हीं के अनुरूप दिखने में व्यतीत कर रहे हैं। मेरा हृदय चीख - चीख कर यही पूछता है। आज तक मैं अपने - आप से पूछता था लेकिन मैं अपने को और अधिक नहीं दबा सका।

मुझे भगवान बुद्ध की वह उक्ति स्मरण में आती है जब उन्होंने कहा था - **''अरे भिक्षुकों! मैंने इस संसार के लोगों को लड़ते हुए देखा और पाया कि यह सदैव ऐसे ही लड़ते रहेंगे, तब मुझे इस संसार से वितृष्णा हो आई।''** प्रभु आप तो सब को शिशुवत् देखते हैं आत्मवत् देखते हैं, परम कारुणिक भाव से देखते हैं, जिस प्रकार मां अपने बच्चे को मल - मूत्र में लिपटे देखकर भी घृणा नहीं करती, लेकिन मुझे इस जगत से वितृष्णा हो गई है। अब ये लोग इतने शिशुवत् भी नहीं हैं जो सहज ही उपेक्षा कर दी जाए, और इसका मूल्य यह देना पड़ रहा है कि आपकी वह चेतना, वह ज्ञान प्रकाशित नहीं हो पा रहा है, जिसका विस्तार करने के लिए ही आप आज से उनसठ वर्ष पूर्व इस धरा पर अवतरित हुए।

मैं नहीं जानता कि मैं अपने हृदय को किस तरह लिखूं। आपके पास बैठने से आपको निहारते रहने से ही मुझे जो कुछ स्पष्ट हुआ है, जिससे मेरा हृदय आकंठ तृप्त हुआ है, जिसकी सुगन्ध चारों ओर बिखरी हुई है, ये धरती, ये आकाश, ये सूर्य, ये चांद, ये तारे जिससे प्रकाशित हैं, उसे शब्दों में कैसे कहूं और **घिसे - पिटे तरीके से या सनसनीखेज अनुभूतियों से मैं आपका व्यक्तित्व कहना ही नहीं चाहता। अनुभूतियां तो बहुत ही घटिया और टुच्ची चीजें है।** मैं आपसे गम्भीर और पुष्टिदायक गरिमा चाहता हूं। आपसे आपका गुरुत्व चाहता हूं। आपसे आपकी पवित्रता, आपकी दिव्यता, आपकी करुणा, आपकी विशाल हृदयता, आपकी क्षमाशीलता, आपकी सबको आत्मवत् मानने की उदात्त स्थिति, आपकी चेतना, आपकी प्रखरता और आपका विद्रोह मांगता हूं, क्योंकि आने वाला भविष्य कैसा है, यह किसी से छुपा नहीं है और **तब उस घटाटोप में अनुभूतियों और चमत्कारों से कुछ नहीं होगा, तब तो छटपटा - छटपटा कर करुणा और प्रेम - दो ही शब्द रह जाएंगे।**

मैं जानता हूं आपका सन्यस्त स्वरूप कैसा प्रखर और विद्रोही रहा है। मैं आपसे आपका वही विद्रोह मांगता हूं। मुझे विद्रोही बनने में कोई लज्जा है ही नहीं। मेरी तो लज्जा यह है कि आपका अंश होते हुए भी मैं प्रबल विद्रोही क्यों नहीं बन सका।

प्रभु! मुझे क्षमा करिए, मैं आप पर कुछ नहीं लिख सकता। मैं उस स्थान पर नहीं खड़ा हूं जहां पर खड़े होकर आपको निहार सकूं और बिना आंख में एक अश्रुकण भर कर निहारे आपके विषय में कुछ कहूं भी तो कैसे?

वह भी है कोई हम जैसा ही

पलक झपकी और आंखों की चमक ने चुप होते न होते कोई झलक देख ली। पता नहीं क्या और कैसी और पता नहीं कब जो बहुत कुछ बातों और इशारों से नहीं कहा जा रहा था वह उन पलकों के सोने और जगने के बीच में हृदय ने अपनी आंखों से पढ़ लिया और पूरा का पूरा जीवन भीग जाने के लिए, किसी का हो जाने के लिए तैयार हो गया। लोग हैरान हो गए, दीवाना समझने लगे, लेकिन खोने वाले का तो दिल और आंखें ही नहीं, कान भी खो गया, होंठ भी खो गए और चाल भी खो गई, बस उसी पल की तड़फ याद रह गई और पूछने वाले पूछते ही रह गए –

हम से छुप छुप कर फिराक पहरों पहर तुम रोए हो
वो भी है कोई हम जैसा ही क्या उसमें तुम देखे हो

यह बताया नहीं जा सकता और बताएं भी तो उसे मानेगा कौन? दीवाना होने का आरोप तो लग ही चुका था, बदहोश और पागल भी तो न कहा जाने लगता। इसी से होठों को सिल लिया और एक अलग दुनिया में खो गए। कोने में बैठे तो उसकी ही यादों में सिमटे - सिमटे, भीड़ में भी रहे तो उसकी ही बांहों में, और जहां कहीं भी गये तो उसका ही खामोश साया अपने तन - बदन में लिपटा पाते रहे।

सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मैं कैसे राजदां कर लूं

(सबब - अर्थ, राजदां-साझेदार)

सूफियों ने जिसे महबूब कहा, गोपियों ने जिसे अपना प्रेमी माना, और कबीर ने खुद को जिसकी दुल्हनियां कहा, जो दादू और रैदास का 'साहब' बना, वे सभी बेशक हम जैसे ही थे। इसी तरह की देह धरकर ही आये थे, हमारे जैसे ही हंसे, बोले थे। लेकिन जिनकी फितरतों में, हरसतों में चाहतों में, उठने - बैठने की अदाओं और सबसे बड़ी बात कि उनकी निगाहों में कोई अलग नूर चमक, तभी तो दीवानगी की कोई चिन्गारी फूटी, कोई शोला जगमगाया और दुनिया खुद - ब - खुद छूटती चली गयी।

अच्छा हुआ कि खुद छूटी मुझसे फिक्रे दुनियां
जितना ख्याल करते उतना मलाल होता

इस दुनिया में था ही क्या जो सीने से लगाकर रखते? चन्द आंसू, कसक, पीड़ा, बदनामी, आपाधापी और बेपरवाह भीड़ के रेले, वहशी बनकर एक - दूसरे का कन्धा छीलते हुए, धक्का मारते हुए निकल जाने की कोशिशों में मसरूफ (व्यस्त) जिन्हें यही सब रास आया, उन्हें यही मुबारक हो। पाने वालों को तो कोई और दुनियां मिल गई, जो हमारे बाप, दादों और पिछली पीढ़ियों को नसीब नहीं हुई, दुनिया भी बहुत बड़ी नहीं, छोटी सी पर स्वप्नों से भरी, एक दरख्त की छांव भर, पर जिसमें थक कर कई मुसाफिर आ बैठे हों, और इसी में ठन्डक थी। फिर ऊंच - ऊंचेरे घर छवाने की चाहत भी जाती रही, समझ में आ गया - काहे को छवाऊं ऊंच उंचेरा, साढ़े तीन हाथ घर मेरा . . . और बस इतना ही जान लेना जीवन की असली शुरुआत हो गई। **किसी के प्रेम का सहारा लिया और बेल की तरह लिपट गए, इतना ही इस जिन्दगी में बहुत सरल भी रहा और बहुत कठिन भी।**

सरल यूं कि पेड़ की घनी छांव का पता तो दूर से ही चल जाता है और उसके नीचे बैठने में भी कोई बन्धन भी नहीं है और मुश्किल यूं कि सैकड़ों मुसीबतें हैं, घर है, बीबी है, बच्चे हैं, बुद्धि है, रूसवाई है और समाज है, जो ऊंगली उठाएगा ही कि यह आलीशान घर को छोड़कर, रुतवे और रुआब को छोड़कर, यहां जमीन पर बिछी दरी पर कैसे बैठे हो! लेकिन वक्त रुकता नहीं, शख्सियत ठहरती नहीं। जीवन का भी क्या भरोसा? पता नहीं ये सांसें भी कितने दिन की संगी है, कौन मेरे साथ दूर तक साथ चलेंगी, इनसे भी क्या अपनापन करना ? कोई मिले और उसके हो जाए, उसी को अपना कर लें वरना जिन्दगी आहिस्ता से थक कर कहीं खो न जाए।

गुजर गया है कोई लम्हा - ए - शगल की तरह
अभी तो मैं उसे पहचान भी न पाया था

(लम्हा-ए-शगल - आनन्द के क्षण)

बेवफा जिन्दगी को ही ठहराया जाऐगा क्योंकि कितनी भी सांसें साथ - साथ क्यों न बीत जाएं, कम ही लगेंगी। कितने जन्मों का इन्तजार रंग लाया कि एक हसरत पूरी हुई, कोई मिला, जिसको देखकर आंखें बावस्ता हुईं, ठन्डी हुईं और निहारने की इच्छाएं जगीं, क्योंकि निहारने में खुद के अन्दर भी रंग उतर आए

और गला भी भर आया पर दिल भी कुछ उदास हो गया कि क्या हम सचमुच जो कुछ देख रहे हैं, सुन रहे हैं और अपनी सांसों से जो महसूस कर रहे हैं, वह हकीकत भी है या फिर कोई भरम?

मुद्दत के बाद उसने जो की लुत्फ की निगाह
जी तो खुश हो गया मगर आंसू निकल पड़े

(लुत्फ - प्रेम)

आंसू- जिनसे जीवन का पथ धुल गया। जन्म - जन्म की कालिख छूट गई और किसी बद्दुआ की तरह लगती इस जिन्दगी से, खुद से ईर्ष्या हो गई। पहली बार अपने होने का मतलब जाना, पहली बार आंखें खोल कर देखना सीखा कि यह दुनियां कितनी खूबसूरत है, जिसे कोई पल - पल मेरे साथ रहकर और भी खूबसूरती दे रहा है, मुझको निहारना सिखा रहा है... आंसुओं की धार, हिचकियों के बीच जो कुछ शब्द फूटे, फिर वही कविता हो गई, वहीं पवित्र मंत्रों का उच्चारण हो गया। देह एक मन्दिर बन गई, जिसमें गुरु आकर स्थापित हो सके।

मोहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं
ये वो नगमा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता

(मखसूस - नियत)

ये आंसू , ये हिचकियां, ये तड़फ सभी को नहीं मिलती और न सभी इसके होने का मतलब जान पाते है ये तो खुदा की तरफ से मिला एक तोहफा है और जिसको भी ऐसा तोहफा मिल जाए वह सही मायनों में मालामाल हो जाता है, नियामत पा जाता है। **वक्त- वक्त पर ऐसे ही तोहफा देने के लिए, अपने चाहने वालों की वीरान जिन्दगी में नगमों की गुनगुनाहट भरने के लिए, बार - बार ऐसी शख्सियतें देह धर कर आती रहीं,** कभी हम उनको पहचान लेते रहे और कभी अपनी मगरूरी में भूले रह कर उनका कारवां गुजर जाने देते रहे . . .

कृष्ण, कृष्ण से लेकर बुद्ध, बुद्ध से लेकर शंकराचार्य, शंकराचार्य से लेकर आज तक . . . और यह कड़ी टूटी नहीं है! संगीत का स्वर कभी मध्यम हुआ है, कभी तेज किन्तु बजता रहा है और बजता ही रहेगा क्योंकि यह अनहद है, यह शाश्वत है। संगीत के सुरों को देखा नहीं जा सकता पर वही संगीत लहरियां मिल कर कभी कभी देह बन जाती हैं, जो बेशक देखने में हमारे और आपके जैसी ही होती है लेकिन होती कुछ और है. . .

और ऐसी संगीत लहरी जब खुद की देह में उतर जाती है तो सारी देह थरथरा जाती है, एक गूंज खोती हुई भी दूर बहुत दूर कई युग पहले तक ले जाती है और तब मन की आंखें देख लेती हैं कि यह पहला परिचय नहीं है, बरसों- बरस का साथ है. . . मेरा खुद का ही वजूद है मेरा ही अक्स (छवि) है और तब कोई मीठी सी तड़फ जगती है, पहली बार मौन संगीत का अर्थ समझ में आता है, पहली बार कुछ खोजने का मन चाहता है और इस धरती से लेकर आकाश तक के सारे फलक पर एक तिनके की तरह नाच आने के लिए कदम उठ जाते हैं—

तू अश्क ही बन के मेरी आंखों में समा जा
मैं आइना देखूं तो तेरा अक्स भी देखूं।।

(अश्क - आंसू)

दुनिया बावरा समझती है समझने दो उनसे खुद की पहचान होनी भी नहीं। जिनसे खुद की पहचान होनी है उनका पता चल गया, यही क्या कम है?

पहचान हो जाने के बाद ही इबादत शुरू होती है जिसमें पल- पल राह देखनी पड़ती है, पल - पल को संवारना होता है और सांसों की डोर साध कर एक अनूठी साधना करनी पड़ती है गुरु को रिझाने के लिए। आंखों में एक नूर भरना पड़ता है, हौसला और विश्वास भर लेना होता है। **यादों की धड़कन से दिल को धड़काना होता है** और वही गुरु मंत्र बन जाती है। खोई - खोई आंखें ही प्रतीक्षा करती हुई उसकी आराधना बन जाती हैं। यह सारा जीवन चलते - फिरते उसकी याद में एक तंत्र में ढल जाता है। उसके काबिल न होते हुए भी अपने - आप को उसके लिए फना कर देना ही, उसको मजबूर कर देना ही, एक निगाह अपने ऊपर डालने के लिए विवश कर देना ही महासाधना बन जाती है।

माना कि तेरे दीद के काबिल नहीं हूं मैं
तू मेरा शौक देख मेरा इंतजार देख

(दीद-कृपा दृष्टि, शौक-कामना)

बस ऐसी ही कुछ मिली जुली बातें, कुछ शर्म और कुछ हसरत, कुछ दीवानगी, कुछ शिकायतें, कुछ आरजुओं से मिलकर ही यह रिश्ता बनता है जिसमें अपने खुद के होने का गुरूर भी होता है और एक नजर डाल देने का आग्रह भी होता है। अपने आप को मिटा कर फकीरी जामा पहन लेना होता है -

जब ऐसा रक्त के एक - एक कतरे में उतर आए कि धमनियों में हौसले की धमक हो और आंखों में नर्मी , तभी समझना चाहिए कि गुरु से परिचय भी हो गया है और रिश्ता बन गया है। जब ऐसा सौभाग्य आ जाए तभी समझना चाहिए कि उत्सव का प्रारम्भ हो गया है और . . . .

दिल ही तो है न संग ओ खिश्त आंख न भर आए तो क्यों
रोएंगे हम हजार बार कोई हमें मनाए क्यों

(संग ओ खिश्त - पत्थर का टुकड़ा)

यही तो उत्सव है!

धूमावती साधना
जब मुझे प्राण-भय से मुक्ति मिली

**जब प्राणों पर ही संकट बन आए
तब सारी चतुराई और वीरता
एक ओर धरी रह जाती है
गुप्त शत्रु के लिए कोई भी युक्ति तो
प्रयोग में लायी ही नहीं जा सकती।
क्योंकि जो सामने है ही नहीं
उससे लड़ें भी तो कैसे? किन्तु
धूमावती साधना
ऐसी स्थिति में अपना कार्य चुपचाप
और तीव्रता से सम्पन्न कर देती है।
एक साधक के जीवन की
सत्य अनुभूति . . .**

आसन्न संकट गहराता ही चला जा रहा था किन्तु स्पष्ट नहीं हो रहा था कि इसके पीछे किसका हाथ हो सकता है। रात्रि को चौंक - चौंक कर नींद खुल जाती और हल्की सी पदचाप भी लगती कि कोई दरवाजे के आस - पास ही टहल रहा है। मैं उठकर पानी से अपना सूखा गला तर कर, उसी अंधेरे में अन्दाज से कुण्डी को टटोल कर देखता कि कहीं वह सरक तो नहीं रही है। आधे सोए और आधे जगते हुए, कुत्तों की भौंक पर नींद बार - बार टूट जाती। एक सप्ताह हो गया था, जब मुझे एक अज्ञात व्यक्ति ने अचानक ही रोक कर धमकी भरे स्वर में कहा था कि अंपने - **आप को सुधार लो वरना. . .**

लेकिन मेरी गलती ही क्या थी? मैंने किसका अहित किया, मुझे याद नहीं आ रहा था और धमकी से स्पष्ट लग रहा था कि वह तो एक सुनियोजित साजिश ही थी, जिससे मुझे तोड़ दिया जाए।

रास्ते में आते - जाते अजनबी चेहरों का घूर - घूर कर देखना, फुसफुसाती आवाज में इशारों का करना, और मेरे समीप से टेढ़ी दृष्टि से देखते हुए निकल जाना, **ज्यों कोई कसाई हलाल किए जाने वाले बकरे को जिबह करने से पहले आंखों ही आंखों में तोलता है।** मैं प्रत्येक गतिविधि का अर्थ समझ रहा था लेकिन बिना किसी प्रमाण के कुछ करने में भी तो असमर्थ था।

यहां तक कि मेरे करीबी दोस्त भी किनारा काट गए, शायद वे भी भयभीत होकर हट गए। उल्टे मुझे ही सलाह व उपदेशों से भर दिया कि यों चलो, यों रहो, यों बोलो, चौकन्ने रहो और बच कर रहो वगैरह - वगैरह। लेकिन इन उपदेशों से कुछ बात बनती नहीं दिख रही थी। होने को तो कुछ भी नहीं हुआ था लेकिन फुस-फुसाहटों से जो मन सहम जाता था, वह तो प्रत्यक्ष लड़ाई से भी बदतर था। **शत्रु सामने होता तो फिर भी उसे लड़ने की सोचता** लेकिन यह लड़ाई तो बहुत ही सोची - समझी और लम्बी दूरी की लगने लगी थी, जिसमें शनैः शनैः मेरा मनोबल तोड़कर मुझे जीते ही जी मुर्दा करने का प्रयास किया जा रहा था और खुद को छुपाए रखते हुए।

धीरे - धीरे एक माह बीत गया। कोई आघात तो नहीं हुआ लेकिन धमकाना पूर्ववत् जारी रहा। मेरी स्थिति यह हो गई थी कि मैं किसी के सामने अपनी बात कहने में भी हिचकिचाने लग गया था। मेरी बातों को लेकर मेरे घनिष्ट मित्र भी पीठ पीछे मेरा उपहास बनाने लग गए थे और घर परिवार के सदस्य जिस दृष्टि से मुझे देखते उससे साफ लगता था कि वे मुझे सनकी या शक्की समझने लग गए हैं।

घर परिवार या ऑफिस का प्रत्येक व्यक्ति अपने - आप में मस्त था किन्तु मैं प्रतिपल किसी भी वार की कल्पना करके सहमा - सहमा रहने लग गया, जिसका स्वाभाविक परिणाम हुआ कि माह भर बीतते न बीतते मेरा सारा चेहरा पीला पड़ गया, बाल तेजी से सफेद होने लगे और आंखें बुझी - बुझी व गड्ढे में धंसी हो गई। मेरी सारी वीरता और चतुराई एक ओर धरी रह गई। ऑफिस में काम करते समय भी आशंका रहती थी और रास्ते चलते भी। ऐसे में कार्य क्षमता तो घटनी ही थी। डॉक्टरों को मैं कारण बताने में असमर्थ था और फिर वे भी कुछ दवा या उपचार देने में असमर्थ थे। **बस नींद की गोलियों के सहारे ज्यों त्यों दिन काट रहा था।**

औलिया, पीर, फकीर, तांत्रिकों सभी के पास भी गया। कभी कोई भस्म लाकर अपने घर के चारों ओर बिखेर दी तो कभी कोई टोटका लेकर चौखट पर गाड़ दिया। मैं जानता था कि इन सभी से कुछ विशेष नहीं होना है, लेकिन मन को समझाने के लिए ये सब भी करता ही रहता था।

एक बात स्पष्ट समझ में आ गई थी कि यहां बुद्धि और चतुराई से कोई बात नहीं सधेगी क्योंकि दूसरा पक्ष अत्यंत धूर्त और कुटिल है, वह लम्बी लड़ाई में थका कर इस प्रकार नष्ट करना चाहता है कि जिससे शक की उंगली कहीं भी न उठे और एक सहज सामान्य सी दुर्घटना समझ कर बात आयी- गयी हो जाए और दुर्घटना तो मेरे चारों ओर मण्डराती लगने लगी थी। अपने स्कूटर पर आते जाते समय बार - बार उन्हीं बातों, कुटिल घातों को सोचते - सोचते बेसुध हो जाता और ध्यान ही न रहता कि पीछे से कोई वाहन हॉर्न दे रहा है अथवा सामने से ट्रक चली आ रही है।

माह भर न बीतते न बीतते मेरा सारा चेहरा पीला पड़ गया, बाल तेजी से सफेद होने लगे, आंखें बुझी बुझी और गढ्ढे में धसी हो चली

दो दिन पूर्व एक गुमनाम पत्र मिलने से तो मैं और भी अधिक सहम कर सिकुड़ गया था, जिसमें चुपचाप परिवार सहित शहर छोड़कर चले जाने की बात लिखी थी। दो दिन से मैं रातों को सो भी न सका था क्योंकि पलक झपकी नहीं कि भयावह आशंकाएं या दृश्य आकर आंखों के सामने नाचने लग जाते। **आए दिन अखबारों में पढ़ने वाली घटनाएं आंखों के सामने नाचने लगतीं और लगता कि बस एक या दो दिन बाद ही मेरी भी मृत्यु का समाचार कहीं इसी तरह किसी कोने में न छपा हो।**

अन्त में मैंने तीसरे ही दिन परिवार सहित वह नगर छोड़ दिया और परिवार द्वारा पूछने पर कारण बता दिया कि कुछ छुट्टियां लेकर घूमने का मन बन गया है। मैं पूरे परिवार के साथ ऋषिकेश की ओर निकल गया जहां कुछ पल विश्राम कर सकूं, अपने - आप को नयी ताजगी से भर सकूं और वहां अपने गुरुदेव के पास बैठकर उनसे खुलकर कुछ कह सकूं।

ऋषिकेश पहुंच कर मेरे चित्त को कुछ शांति मिली। रोज - रोज के संदिग्ध चेहरों, कुटिल इशारों और फुसफुसाहटों से छुटकारा तो मिला ही साथ ही अपने गुरुदेव के पास बैठ कर निश्चिंत और भय मुक्त हो सका। दो - चार दिन बीतने पर मनः स्थिति शांत होने पर मैंने उनसे एकांत के क्षणों में अपनी स्थिति ज्यों की त्यों बताई। साथ ही उनसे यह भी यह स्पष्ट कहा कि मैंने अब तक कौन - कौन से फकीरों, साधुओं का बताया कौन - कौन सा उपाय प्रयोग में लिया है, लेकिन समस्याएं सुलझना तो दूर और जटिल ही होती जा रही है। यहां तक कि मेरा परिवार ही मुझे अर्ध-विक्षिप्त समझने लग गया है।

गुरुदेव ने धैर्य पूर्वक मेरी बात सुनी और आश्रम के बाहर न जाने देने की आज्ञा देते हुए चार - पांच दिन प्रतीक्षा करने को कहा। मुझे आज तक याद है कि पांचवें दिन **माघ अमावस्या** की घनी रात थी जब उन्होंने रात्रि में दस बजे के पश्चात् मुझे अपने साथ चलने की आज्ञा दी।

रात्रि का घना अंधकार और रात्रि का प्रकोप हल्की रिमझिम से बढ़कर और घना चला था। मेरा मन आनाकानी कर रहा था किन्तु प्राणों के भय की बात जो सामने खड़ी हुई थी उससे मैं बिना किसी ना - नुकूर किए उनके साथ चल दिया।

आश्रम में लगभग ५०० गज दूर जहां गंगा का तीव्र प्रवाह उस काली रात में और भी भय उत्पन्न कर रहा था, उन्होंने एक स्थान पर रूक कर मुझे साथ में लाया काला कम्बल बिछा कर उस पर बैठ जाने की आज्ञा देते हुए एक काला कम्बल सिर से भी ओढ़ा दिया और एक चिमटे से मेरे चारों ओर घेरा खींचते हुए स्वयं भी कुछ दूर पर जा बैठे। **सांय - सांय चलती हवाओं के बीच शीत के कष्ट भी ज्यादा किसी अप्रत्याशित का भय मन का आशंकित किए था।** रात्रि के इस गहन अंधकार में एक हल्का सा सहारा तब मिला जब पूज्य गुरुदेव जी ने साथ में लाई कुछ सूखी लकड़ियां जला कर वातावरण में उष्मा व चैतन्यता प्रदान की।

. . . उनका अस्फुट उच्चारण

सीधे मेरे कानों में आकर समा रहा था . . . वे थोड़ी थोड़ी देर बाद ही सरसों के कुछ दानों का प्रहार करते जा रहे थे। एक घड़ी - दो घड़ी करके समय बीतता चला गया और मेरे अनुमान से दो घंटे से भी अधिक बीत गए। अग्नि से उत्पन्न ऊष्मा व प्रकाश मेरे प्राणों को चैतन्य बनाए था। मैं थकान से निस्तेज हुआ जा रहा था कि तभी ऐसा लगा मेरा गला किसी ने पूरी शक्ति से भींच लिया है - ज्यों मृत्यु ही मेरे सिर पर सवार हो गई और तभी पूज्य गुरुदेव ने खड़े होते हुए पूर्ण शक्ति से मन्त्रोच्चार पूर्वक बाकी बचे सरसों के सभी दाने अग्नि में समर्पित कर दिए। अग्नि में उनका पड़ना था कि एक भभक उठी और मेरे शरीर से कोई दबाव खिंचता हुआ जा कर उस अग्नि में जाकर भस्म हो गया हो . . . मेरा सारा शरीर थरथराकर अचेत सा ही हो गया।

. . . सारा शरीर हल्का होकर थरथरा रहा था मैं अद्भुत रूप से अपने - आप को हल्का पाते हुए कृतज्ञ और अस्फुट स्वरों में न जाने का क्या क्या कहने लगा . . . पूज्य गुरुदेव का स्वर मुझको धीमे - धीमे पुनः चैतन्य अवस्था में ले आया। **यदि वे मेरे संग न होते उस भयानक अनुभव के बाद मेरा प्राण ही निकल जाते।**

. . . अब मुझे न तो वह रात भयावह लग रही थी न मन में कोई द्वन्द शेष रह गया था, आकाश घना काला होते हुए भी खुला - खुला और साफ लग रहा था। शेष रात हम दोनों ने उसी स्थान पर काटी। अगले दिन प्रातः गुरुदेव के साथ फिर वापस आते समय मैंने शायद पहली बार ऋषिकेश की प्रकृति के सौन्दर्य को खुलकर निहारा, ऋषिकेश की पावनता को अपने प्राणों में भरा, ऊंचे - ऊंचे पर्वत, विविध वनस्पतियों से भरा क्षेत्र, गंगा का निर्मल प्रवाह सभी कुछ प्राकृतिक सौन्दर्य की नई परिभाषा लग रहा था क्योंकि मेरे प्राणों पर छाया संकट और दबाव जो हट चुका था।

इसके विपरीत मेरे गुरुदेव का चेहरा तनाव पूर्ण और उग्रता से भरा था जैसे उनके अन्दर कोई द्वन्द चल रहा हो। मैं उनके क्रोध युक्त चेहरे और आंखों से झलकती लाली को देखकर कुछ बोलने और पूछने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। मेरी छुट्टियां शीघ्र ही समाप्त हो रही थीं और वापस आश्रम लौटकर मैं चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा कि कब मुझे गुरुदेव से बात करने का अवसर मिले गा। शाम के झुटपुटे तक जाकर वे सहज

जब मैंने घर में वह यंत्र रख मंत्र जप किया तो आश्चर्य में पड़ गया . . . आंखों के सामने चित्र बनने बिगड़ने लगे . . .

हुए और मुझे अपने समीप बुलाकर जिस प्रकार से एक भीषण षडयन्त्र का रहस्य बताया उसको याद करके आज भी मैं खिन्न हो जाता हूं।

वास्तव में ही मेरे प्राणों पर संकट आसन्न था और उन्होंने पिछली रात्रि में जो साधना सम्पन्न कराई वह प्रचण्ड महा विद्या धूमावती साधना थी, उन्होंने कुछ रहस्य बताए और उन्होंने अपने पास रखी काली रंग की एक माला तथा भोजपत्र पर बना एक यन्त्र मुझे देकर वह मन्त्र भी बताया जिसका उच्चारण उन्होंने पिछली रात में किया था। मैंने श्रद्धापूर्वक वह माला और यन्त्र ले लिया और वहां से अगले दिन वापस अपने घर प्रस्थान किया।

घर पर जब मैंने उस यन्त्र को सामने रख मन्त्र का जप प्रारम्भ किया तो घोर आश्चर्य में पड़ गया। मन्त्र जप के काल में ही मेरी आंखों से अस्पष्ट से दृश्य नाचने लग गए। मैंने उन दृश्यों को आंख बन्द कर गम्भीरता पूर्वक देखते हुए उसका तारतम्य और अर्थ समझने का प्रयास किया तो आश्चर्य में पड़ गया। मेरे ही कार्यालय का एक व्यक्ति सारी गतिविधियां सुनियोजित ढंग से संचालित करवा रहा था जिससे मैं उसके रास्ते से हट जाऊं और मेरे स्थान पर वह पदोन्नति प्राप्त कर सके। केवल किराये के गुण्डों का ही नहीं, तांत्रिक प्रयोगों का भी उसने जमकर उपयोग किया था, लेकिन गुरुदेव की कृपा से मुझे समय रहते ही ऐसा उपाय प्राप्त हो गया जिसके द्वारा मैं न केवल उस समय आकस्मिक संकट से बच सका, बल्कि आज तक भी निश्चिन्त और सुखी बना हूं।

भोज पत्र पर बने यन्त्र को मैंने नष्ट हो जाने के भय से तांबे पर अंकित करवा लिया और विधि पूर्वक उसका पूजन सम्पन्न करवा कर उसे अपने पूज्य गुरुदेव से चैतन्य भी करवा लिया। गुरुदेव की ही दी गई उस काली माला द्वारा **(जो वास्तव में काले हकीक पत्थरों द्वारा बनी थी)** मैं नित्य प्रातः एक माला मन्त्र जप **"धूं धूं धूमावती ठः ठः"** को सम्पन्न कर ही अब अपने कार्य पर जाता हूं और जब - जब मन में कोई बैचेनी या शंका जैसी स्थिति उत्पन्न होती है तब - तब मंगल अथवा रविवार की रात्रि की प्रतीक्षा कर ११ माला उपरोक्त मन्त्र की जप लेता हूं और मां भगवती धूमावती की कृपा से आने वाली प्रत्येक विपत्ति का भान प्राप्त कर सतर्क व सावधान न हो जाता हूं।

यह युग केवल ऊपरी तौर पर ही आधुनिक तौर तरीके अपनाए हैं अन्यथा आज के युग में तो तांत्रिक प्रयोग, मारण या उच्चाटन प्रयोग पहले की अपेक्षा कई गुने बढ़ चुके हैं और मुझे इस बात का अनुभव अपने साथ बीती घटना के द्वारा ही हुआ किन्तु पूज्य गुरुदेव की कृपा से, धूमावती का सुरक्षा चक्र प्राप्त कर जीवन को समाप्त होने किसी आघात से ग्रस्त होने अथवा परिवार को बिखरने से बचा सका।

"जब साधकों ने यौवन, रूप की नई-नई कल्पनाएं कीं, साकार रूप ढूंढे तभी पता चला कि इस धरा की स्त्री से भी अधिक सौन्दर्य तो कहीं और बेशुमार बिखरा पड़ा है।

जहां कवियों की कल्पना साकार रूप लेकर उपस्थित है . . ."

जिसके नेत्रों में ही

जहां सुरमई शाम की रंगत सलोनापन बनकर तन पर उतरी है और शाम हो जाने पर घर को वापस लौटती हिरणी का सहमा-सहमा रूप ही आंखों में उतर आया है, या अलस भाव भरा है प्रियतम के पास उठकर आने का! . . . अंगड़ाइयां भी कुछ कह रही हैं और जिसकी अंगड़ाइयों में यौवन के पक्षी पंख फैलाकर उड़ने को तत्पर हो गए हैं . . . जिसकी मादक चाल भी अंगड़ाई का कोई मदमस्त गीत, एक सुरीली खिंचती तान बन गई हो . . .

कानों तक खिंचते, दहकते नयनों की लौ . . . शर्म और कशिश की लाली से भर कर अधखुली होकर देखती आंखें, उपालम्भ देती कि क्या तुम मेरे जीवन में आओगे भी! मुझे रिझा सकोगे, मेरे संगी बनोगे और क्या कहीं बीच में ही तो नहीं छोड़ जाओगे? यह उपालम्भ ही छिपाए हुए है प्रेम, पुकार और कुछ घड़ी साथ रहने की बातें . . .

सुलोचना कहा या मदलोचना अन्तर कुछ भी नहीं। मादकता से जिसकी सारी देह सलोनी, खुमारी भरी हो, उसके लिए दोनों नाम ही समान है क्योंकि . . .

नूनमाज्ञा करस्तस्या सुभ्रुवो मकर ध्वजः
यतस्तन्नेत्र संचार सूचितेषु प्रवर्तते।।

अर्थात् कामदेव भी उन्हीं सुन्दर भौंहों वाली युवतियों के आज्ञा पालक हैं, वे जिधर आंख फेरती हैं, कटाक्ष भर करती नहीं कि कामदेव उधर अपना व्यापार प्रारम्भ कर देते हैं।

निश्चित रूप से यह बात सुलोचना के लिए ही कही गई है जिसकी सारी देह कटाक्ष कर रही है, जिसको आते देख कर लगने लगे कि सुकोमल शैय्या की चुभन भी न सहन करने के कारण इसकी छुई-मई सी सलोनी त्वचा भी यहां वहां से कुम्हला कर यूं दिखने लगी है!

. . . पर यह इस रात में कोई खनक सी कैसे उतर आयी? ठंडी हवाएं मेरे तन - बदन का छूकर, मुझे गुदगुदाकर जगाने क्यों लगीं? कहां से इन फूलों ने, इन नन्हें फूलों ने इशारे करने सीख लिए और छेड़खानी करने पर उतर आए! अपनी मादक सुगन्ध को सन्नाटे में घोलते हुए, कोई नरमी सी आसमान में बिखर कर नीली रंगत को उत्तेजक क्यों बनाने लगी और यह संगीत . . . बाहर से फूट रहा है या मेरे ही भीतर से? क्यों सारा प्रकृति का व्यापार ही विद्रोह पर उतर आया है, और मेरा तन - बदन मुझसे ही छीने लिए जा रहा है, क्यों मेरी आंखें अधमुंदी हो गई है और पूरी चांदनी फैलने की रुत न होते हुए भी मन में उजास फैल गई है. . . क्यों?

द्वितीया ही थी, उजियारा पाख कल से शुरू हुआ था और हल्का अंधियारा मादक लाली के साथ बिखर गया, ज्यों सुलोचना की मादक देह ही चारों ओर छा गई हो या उसकी रंगत मेरी आंखों में कहीं ऐसी बस तो नहीं गई कि चारों ओर मुझे वहीं दिखाई देने लग गई हो।

. . . थोड़ा चुप होकर सुनिये न! क्या कोई फुसफसाहटें नहीं बिखरी है, आस पास क्या कोई आसपास आकर अपना स्पर्श देने का व्यग्र नहीं हो गई है, फूल इतनी मादक गन्ध नहीं कह सकते, इसमें तो देह - गन्ध भी छुपी है!

शीत की वह रात मेरे रोम-रोम में ठंडक बनकर उतरती चली गई, उधर द्वितीया का चांद पीला पड़कर मुस्करा रहा था . . . मैं उसकी आंखों को अपने ऊपर और देर तक नहीं सह सका।

मैं नहीं वह भी शर्म से भर उठी, पतली सी छरहरी लम्बी काया, कमनीयता और सरसता से भरी, मुस्कराहटों से आत्मीयता को इतना घना करती हुई कि सारे रिश्ते-नाते खोने ही लगने लगे, लम्बी और घनी चोटी कटि की मर्यादा को भी न मान उसकी सीमा को भी उल्लंघित करती

सौन्दर्य बिना प्रदर्शन के भी अत्यन्त तीव्रता से आकर्षित करने वाला हो सकता है। पीन वक्षस्थल या पृथुल नितम्बों के अभाव में भी कोई रूपसी कहला सकती है, भड़कीले वस्त्र पहने बिना भी कोई छवि बन कर आंखों में समा सकती है और आभूषणों की न्यूनता में भी कोई अपने रूप से ही मन में जगमगा सकती है। केवल अपनी निर्दोष मुखाकृति और सुकोमल हावभाव से ही सुलोचना भड़कीले और चकाचौंध से भरे सौन्दर्य के मध्य एक आश्वस्त करने वाले सौन्दर्य का ही दूसरा नाम है। **अपने आस-पास की ही परिचित लगती किन्तु ऐसी विशिष्ट सुन्दरी है जिसके द्वारा सचमुच सौन्दर्य एक नए ढंग से परिभाषित किया जा सकता है।**

वश्यंकरी योनि इन्हीं गुणों का साकार रूप है और सुलोचना, वश्यंकरी योनि की प्रमुख नायिका। नृत्य, गायन में अप्सराओं के समान विशेष निपुण न होती हुई भी वश्यंकरी योनि की नायिकाएं विश्वास - पूर्ण, मधुर और आजीवन मित्र के रूप में सहायक सिद्ध होती ही हैं।

यदि बारीकी से देखे तो वश्यंकरी योनि अपने गुणों व स्वरूप में यक्षिणी वर्ग के अत्यन्त निकट है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहां यक्षिणियां कामोत्तेजक स्वरूप में रहती है, विलास प्रिय होती है और

हुई, जैसे विधाता ने पूरी सरस और पतली देह का सन्तुलन बनाए रखने के लिए घने बालों का इस तरह कोई सहारा दे दिया हो और उसी बहाने किसी को आवद्ध कर लेने का भी।

देह पर पड़े हुए गहरे हरे रंग के
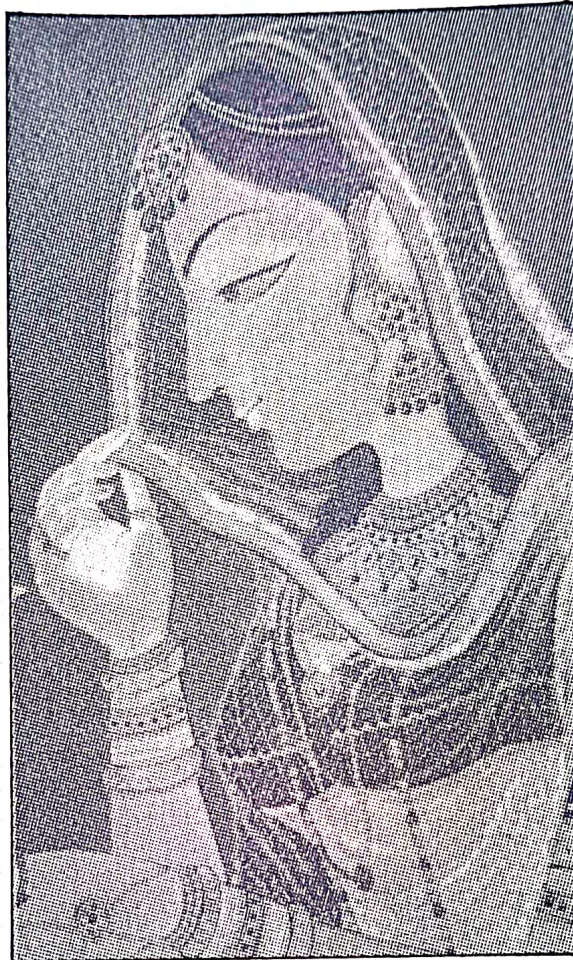
वस्त्र और बिना किसी प्रदर्शन के ही अपनी देह की भाषा से ही सौन्दर्य को एक नया आयाम देती हुई . . . सलज्ज और न्यौछावर होकर! . . . जिसकी छोटी सी चिबुक नर्म ओर छोटे सरस होठों की मासूमियत को एक ही स्थान पर केन्द्रित करने लगी थी और जिसकी लम्बी पतली उंगलियों में प्रेम ही प्रेम छलक रहा था।

यौवन की मादक अंगड़ाईयां हैं
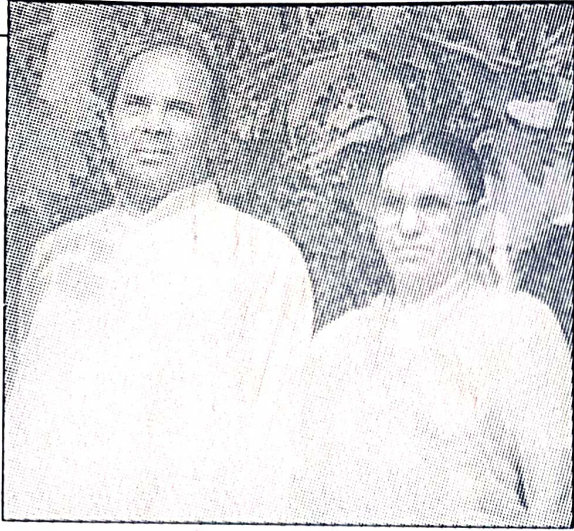
अहोभाव

हमारे पाठक प्रायः अपने पत्रों में पूज्यपाद गुरुदेव के प्रति अपनी मनोभावनाएं व्यक्त करने के क्रम में कोई लघु कविता या काव्यात्मक विवरण भेजते ही रहते हैं। *उनकी इसी प्रतिभा को हमने एक दिशा देने का प्रयास किया है "अहोभाव" के माध्यम से, क्योंकि यह शिष्य या पाठक का अहोभाव ही तो है. . .*

आपको पूज्यपाद गुरुदेव के प्रस्तुत चित्र के आधार पर अपनी भावनाएं काव्य की चार पंक्तियों में भेजनी है और पुरस्कार से भी अधिक आशीर्वाद स्वरूप में **प्रथम** आने पर **एस सीरीज** की छः पुस्तकों का सेट, **द्वितीय** स्तर पर तीन पुस्तकें अथवा **तृतीय** पुरस्कार के रूप में एक पुस्तक का पात्र भी बन जाता है। रचना मौलिक एवं अप्रकाशित तथा अप्रचारित होने का दायित्व आप को प्रविष्टि के साथ एक पन्ने पर घोषित करना होगा।

अपनी प्रविष्टि इस प्रकार प्रेषित करें --

सम्पर्क : **अहोभाव** (२४), गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली-३४,फोन-०११-७१८२२४८

परिणाम : अहोभाव (२२)

माह **फरवरी** के अंक में प्रकाशित **अहोभाव(प्रविष्टि संख्या २२)** के प्रति पाठकों का उत्साह प्रशंसा योग्य रहा अनेक पाठकों ने अपनी मनोभावनाएं अत्यन्त सुन्दर शब्दों में छन्द बद्ध कर हमें प्रेषित की। भावनाओं की दृष्टि से किसी भी पाठक की रचना किसी दूसरे से कम नहीं थी किन्तु शैली, काव्य, कला और शब्दों के उचित चयन के आधार पर जिन्हें सम्पादक मण्डल ने पुरस्कार योग्य घोषित किया उनके नाम हैं —

प्रथम पुरस्कार

हैं, इन आंखों में ही जीवन की,
प्रेम - ममतामयी -पथ की राहें,
क्योंकि जब ये नजरें उठें तो,
मौत भी घबरा जाये।

श्री विनोद कुमार चौरसिया,रॉयल चौक, सिंगरोड़ी पुरा, छिन्दवाड़ा(म.प्र.)

द्वितीय पुरस्कार

चंचल नदियां से अक्षों में, महासमुद्र का सा स्वभाव है,
अमृत कलश से अमर तत्व पर चिन्तन द्रव का मधुर स्राव है।
मन प्रशान्ति नित उग्र हुई जाती है दर्शन कर - कर के,
धन्य, महाप्रभो! धन्य है, कितना, अभिनव "अहोभाव" है।।

श्री ऋषभ भारद्वाज, द्वारा : श्री लहरी शिवम, प्रज्ञा चौक, दिष्णु धाम कॉलोनी न्यू माधव नगर ,सहारनपुर(उ.प्र.)

तृतीय पुरस्कार : श्री दिनुभाई जोशी, रेल्वे ग्रास यार्ड के सामने, उमरगाम रोड, वलसाड,गुजरात

समस्त विजेताओं के पुरस्कार प्रेषित किए जा रहे हैं।

(पृष्ठ ०० का शेष)

साधक पर अपना एकछत्र अधिकार जमाने के लिए बेहद इच्छुक होती है, वहीं वश्यंकरी योनि की नायिकाएं शांत और सुखद स्वरूप में सहज समर्पित हो जाने के लिए तत्पर रहती हैं।

इसी गुण का प्रभाव था कि मुझे एक दिन की ही साधना में सुलोचना वश्यंकरी की न केवल प्रत्यक्ष सिद्धि मिल गई वरन उसका प्रत्यक्ष दर्शन भी। प्रियारूप से, मित्र रूप से, सिद्ध की जाने वाली सुलोचना की साधना में कठिनाई तो कुछ है ही नहीं, केवल एक ही बात प्रमुख है कि व्यक्ति ओछी मानसिकता लेकर या मनचाहा उपभोग करने की भावना को लेकर इस साधना को सम्पन्न न करे।

सुलोचना का साहचर्य ही व्यक्ति को इस प्रकार तृप्त कर देने वाला है, जिससे व्यक्ति में एक नया आत्मविश्वास उतर आता है। तृप्ति और आत्म विश्वास ही सम्मोहन का आधार है। आधे-अधूरे और अतृप्त व्यक्ति सम्मोहन के क्षेत्र में सफल हो ही नहीं सकते और यह साधना वास्तव में सम्मोहन साधना का ही एक रूप है जिससे व्यक्ति के अन्दर ऐसी छलछलाहट और मादकता आ जाती है जिससे प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रभावित होने लगता है, क्योंकि जहां सुलोचना वश्यंकरी है वहां सुखद साहचर्य, सौन्दर्य- साहचर्य, सलोनापन और लावण्य का अद्भुत मिश्रण व शालीनता की मिलीजुली तृप्ति जो हैं। साधक को आकंठ तृप्त कर देने में समर्थ!

समर्पण प्रयोग जो जीवन को पूर्णता देता है

जब सभी साधनाएं पूर्ण हो जाती हैं तब एक पग बचता है– समर्पण का!

अर्थात् जिस उंगली को पकड़ कर अभी तक अपने गुरु के साथ आनन्द के समुद्र में तैरे भर थे, उसमें उंगली छोड़कर निमग्न हो जाएं. . .

समर्पण का सीधा सा अर्थ है लघु का विराट हो जाना, अंश का पूर्ण हो जाना, जीव का ब्रह्म हो जाना और शिष्यत्व को गुरुत्व में परिवर्तित कर देना। अनुष्ठान, कर्मकाण्ड, मंत्र-जप, चिन्तन, ध्यान और समाधि इसी भाव की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है। क्षीण धारा की भी परिणति समुद्र में होनी अनिवार्य है और समर्पण कालखण्ड को सीमित करने का एक पक्ष मात्र होता है। **प्रत्येक व्यक्ति उसी विराट का अंग है और उसी पर जाकर पूर्ण हो रहा है। एक क्षुद्र कीट भी ब्रह्म की स्थिति प्राप्त कर सकता है। समर्पण केवल उसे पूर्णता की ओर गति से अग्रसर कर देता है।** समर्पण सही अर्थों में जीवन की गति है, यह केवल शिष्यत्व या साधकत्व का ही एक अनिवार्य अंग नहीं वरन् यह तो पूरे मानव जीवन की श्रेयता है। गुरु - शिष्य के मध्य तो यह अनिवार्य विषय है ही, लेकिन इसकी सीमाएं और भी अधिक सुदूर तक विस्तारित हैं।

धरा पर खड़े होने पर क्षितिज हमें समीप दिख सकता है, लेकिन ऊंचे किसी पर्वत शिखर पर चढ़ जाएं तो वही लघु क्षितिज एक विराट असीम नभ में परिवर्तित हो जाता है। समर्पण भी ऐसा ही है जो निस्सीम आकाश है। इसी उच्चता पर खड़े होकर इसका सौन्दर्य एक बार निहारने की आवश्यकता है और तब स्पष्ट होगा कि यह आकाश इतना छोटा नहीं था, जितना हम धरा पर खड़े होकर समझ रहे थे।

गुरुदेव की शास्त्रों में संज्ञा जहां शाम्भव है अर्थात् समुद्र है, वहीं उन्हें 'व्योमवत् व्याप्त' भी कहा गया है। किसी विराट गगन मण्डल की तरह किसी विरल वायुमण्डल की तरह, वे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विस्तारित हैं, और **जब शिष्य समर्पित होता है तो उसे कुछ करना नहीं पड़ता, आगे बढ़कर इसी विरलता में खो जाना होता है।** हमारे मन्दिर, हमारे उपासना स्थल, हमारे साधना स्थल सभी इसी बात को प्रतीकात्मक रूप से कह रहे हैं। नीचे चौड़ा आधार, क्रमशः पतला होता हुआ शिखर और अन्त में उस शिखर के भी बिन्दुवत् क्षेत्र के ऊपर निस्सीम आकाश! स्थूल से आरम्भ कर सूक्ष्म में लीन होते हुए व्योमवत् जाने की क्रिया का स्पष्ट संकेत– और यही स्थिति प्रत्येक साधक को अपने जीवन में स्पर्श करनी ही पड़ती है।

समर्पण 'स्व' का अंत नहीं

समर्पण 'स्व' का अन्त नहीं, 'स्व' की पूर्णता है। समुद्र से एक बूंद उठती है तब उसका कोई भी आकार-प्रकार या रूप-रंग नहीं रह जाता। सूरज की गर्मी से तप्त होकर जो एक जल कण खोता है वही अनेक कणों से मिलकर बादल बन जाता है, तृप्ति देने के लिए आतुर और सक्षम। **शिष्य भी इस जीवन के महासमुद्र से विषमताओं की अग्नि में तप कर विरल हो गई एक लघु बूंद ही तो है** और जब वह ऐसी ही अनेक बार अपना अस्तित्व खो चुकी बूंदों से मिल जाता है, तो एक बादल बन जाता है, जिससे

फिर किसी और को धूप में झुलसना न पड़े, किसी और को बिना वर्षा के सूख कर समाप्त हो जाने की नियति न झेलनी पड़े।

नदी-मैदान, पठार सभी को पार करती है, उलझती है, अटकती है, प्रवाह भी कम पड़ता है और जल भी घट जाता है, फिर भी आगे बढ़ती रहती है और समुद्र में विलीन होकर पूर्णता प्राप्त कर लेती है। ठीक उसी प्रकार यह जीवन भी भौतिक सुखों के हरे-भरे मैदान और कठिनाइयों के पठार, पहाड़ से उलझता, लड़ता हुआ अन्त में जाकर गुरु रूपी समुद्र में समाहित हो पूर्णता प्राप्त करता ही है, जिन्हें जीवित और साकार ब्रह्म की उपमा दी गई है।

यदि आंख की कोर में थोड़ी सी श्रद्धा भर कर देखा जाए तो वे ही साक्षात् ईश्वर हैं। आंख में समर्पण की एक झिलमिलाहट भर कर उनकी ओर निहारना ही जीवन की न मिटने वाली घटना होती है। दृश्य आते हैं और चले जाते हैं, परिचय होते हैं और टूट जाते हैं, सम्बन्ध बनते हैं और काल के गर्त में जाकर समा जाते हैं, लेकिन एक बार आंखों में चमक भर कर कनखियों से गुरु की ओर निहार लेना, उनमें कुछ का कुछ और देख लेना, यही जीवन की स्थायी घटना बन जाती है और यही घटना अविस्मरणीय होती है, क्योंकि यह काल के प्रभाव में हुई कोई घटना नहीं होती है। व्यक्ति जब काल के सतत् प्रवाह में बहता हुआ थोड़ा सा रुकता है तभी वह ऐसा कुछ पाता है, और यही समर्पण है। **जब व्यक्ति को अपना होना, अपना अस्तित्व सम्भाले रखना ही बोझ लगने लगे, दो होने की भावना ही उसको मथ कर रख देती हो, जब वह एक और केवल एक ही रह जाने का प्रबल इच्छुक हो उठा हो, तभी समर्पण की घटना घटित होती है।**

प्रेम गली अति सांकरी

यह तो जीवन का एक आग्रह है, अपना अस्तित्व खोजने की चेष्टा है, अपनी पहिचान प्राप्त कर लेने की तड़फ है और यह पहिचान उसकी पहिचान होने पर ही पूर्ण होती है, तब दो रह ही नहीं जाता— "जब मैं था तब तू नहीं, अब तू है मैं नाहि।"

प्रेम की गली संकरी होती है या नहीं होती, लेकिन प्रेम की गली में दो का बोध खटकने लगता है। मानव एक नए पथ पर चल पड़ता है, वह जान जाता है कि वह एक क्षुद्र जीव नहीं है वह साक्षात् ब्रह्म स्वरूप है और यही बोध उसमें निरन्तर त्वरा देता है।

समर्पण जीवन की सर्वाधिक सरल और सहज क्रिया है। **क्या हम सांस लिए बिना रह सकते हैं?– नहीं! और हम समर्पण किए बिना भी नहीं रह सकते, क्योंकि समर्पण का अर्थ ही है– अपनी पहिचान प्राप्त कर लेना।** यह रिक्त होना नहीं है, न अपना अस्तित्व ही समाप्त कर देना है। समर्पण की ऐसी धारणा ही गलत है, समर्पण तो गुरु कृपा की फुहारों में भीग कर अपने-आप को सरस कर लेने की क्रिया है। समर्पण का आरम्भ गुरुदेव हैं और समर्पण का इति भी गुरुदेव हैं।

> **जो नदी समुद्र तट तक आ गई हो समुद्र उसका स्वागत अपने ज्वार से करता है, जो शिष्य समर्पण का पहला कदम बढ़ा चुका, गुरु उसका स्वयं ही आलिंगन कर लेते हैं।**

जिस प्रकार सूखी धरती वर्षा की फुहारों से सीझ कर ही बीज को अंकुरित करने की क्षमता प्राप्त कर पाती है, इसी तरह तो गुरु - कृपा से अपने जीवन में तृप्त, सरस व पूर्ण होकर श्रद्धा, भक्ति, व प्रेम के अंकुरों को प्रकट करना होता है, जिसकी लहलहाती छाया में अपना जीवन तो फलदार होता ही है, दूसरों को भी सुखद छाया मिलती है।

कुछ भी नहीं करना होता है समर्पित होने के लिए, **नदी जब चलती है तब वह चीख-चीख कर नहीं कहती है कि देखो मैं समुद्र से मिलने जा रही हूं। वर्षा की टपकती बूंद कभी नहीं कहती कि मैं धरती को सरस करने जा रही हूं। प्रकृति का मौन व्यापार प्रत्येक कदम पर समर्पण ही तो व्यक्त कर रहा है, क्योंकि उसमें आग्रह है।** जिस दिन गुरुदेव का साक्षात्कार हो जाए, गुरु कृपा का स्पर्श मिल जाए उसके बाद कुछ करने को शेष रह ही नहीं जाता और जो शेष रह जाता है वह होती है अदम्य लालसा, कि कब मेरा मार्ग पूर्ण होगा और कब मैं जाकर अपने जीवन का अर्थ प्राप्त कर लूंगा।

यह सच है कि समुद्र आगे बढ़कर नदी के पास नहीं आता, लेकिन यह भी सत्य है कि नदी से अधिक आग्रह समुद्र का ही होता है, क्योंकि अंश की पूर्ण के प्रति जो व्यग्रता होती है, उससे कई गुना अधिक व्यग्रता पूर्ण की अपने अंश के प्रति होती है बस एक मर्यादा होती है कि वह अपनी व्यग्रता प्रकट नहीं कर सकता।

जल में जल ही मिल सकता है, जल में तेल अगर मिल भी जाए तो वह घुल-मिल नहीं सकता। नदी की सम्पूर्ण यात्रा इसी निर्मलत्व को प्राप्त करने की होती है और समुद्र अपनी गर्जना से, अपनी लहरों के प्रवाह से अपने हृदय की बात

कहता ही रहता है, जब नहीं सहन कर पाता, तब वह ज्वार के रूप में कुछ कहता है और जब ज्वार समीप हो तब तो मात्र एक कदम ही और बढ़ना पड़ता है - समुद्र के विशाल प्रवाह में निमग्न होने के लिए!

बूंद बिलानी समुद्र में

ऐसा ही एक अवसर, एक पर्व आ रहा है इसी **२१ अप्रैल** को। यह गुरुदेव का जन्मदिन है और, यह समुद्र का ज्वार है। जो नदी कई ऊबड़-खाबड़ मार्गों को पार कर अन्त में आकर निश्चेष्ट हो गई हो, उसको अपने वक्षस्थल से लगा लेने का उपाय है। समुद्र के अत्यन्त समीप आ जाने पर नदी का प्रवाह फिर मन्द पड़ ही जाता है। अनगिनत स्मृतियां, अनगिनत संस्मरण, दुखों के भी और सुखों के भी, कठिनाइयों के भी और छलछलाहटों के भी, हरे-भरे मैदानों के भी और सूखे पठारों के भी . . . नदी मानों एक क्षण रुक कर सब याद करती है और फिर अपने जीवन की पूर्णता, अपने जीवन की श्रेयता को देखते हुए, उसे पहिचानते हुए समुद्र में जाकर लीन हो जाती है।

इन चन्द कदमों को, जो थक गए होते हैं उनसे जब न चला जा रहा होता है, न बढ़ा जा रहा होता है तब उन्हें समुद्र आगे बढ़कर अपने ज्वार के माध्यम से, अपने हृदय के प्रेम और करुणा के द्वारा पूर्ण कर देता है। एक क्षण के लिए वह अपनी मर्यादा छोड़ देता है पर यह क्षण अल्प होता है, ज्वार के बाद भाटा आता है और फिर कब यह घटना दोहरायी जाएगी, इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
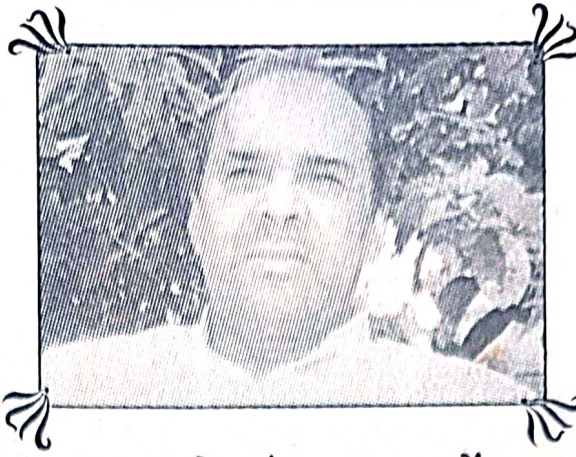
इस घोर संक्रमण काल में
जब मानव दिग्भ्रमित है
तुम पाथेय बनो।
जब वे खोखली सभ्यता से दिशाशून्य है
तुम मार्गदर्शक बनो।
जब वे आसुरी प्रवृत्तियों में लिप्त है
तुम साधनात्मक प्रकाश से शून्यता भरो।
छा जाओ पूरी पृथ्वी पर, और साधना
के द्वारा सहस्रार जाग्रत कर
प्राणमय कोष से
धरा पर सिद्धाश्रम प्रेरित दिव्य युग
स्थापित
करो।

- पूज्यपाद गुरुदेव

बरसा बादल प्रेम का

वास्तव में इसे समर्पण प्रयोग की जो प्रारम्भ में संज्ञा दी गई है, उसके लिए कोई भी क्रिया-कलाप आवश्यक नहीं। नदी स्वतः ही बह कर वहां तक आ चुकी है जहां तक वह आ सकती थी, अब तो आगे का कार्य समुद्र स्वयं ही पूरा कर लेगा, क्योंकि समर्पण के लिए बोलकर अभिव्यक्त करना आवश्यक है ही नहीं, समर्पण बोलकर अभिव्यक्त किया ही नहीं जा सकता। वह एक ऐसी स्थिति है जहां मौन ही बातों को प्रेषित करने का माध्यम बन जाता है। **यदि मौन संवाद नहीं हुआ तो फिर समर्पण भी पूरा नहीं हुआ**, हृदय की एकाकारिता हुई ही नहीं जबकि समर्पण तो हृदय के एक हो जाने का व्यक्त रूप है। समतुल्य हो जाने का विनम्र प्रयास है। यद्यपि एक रज कण पर्वत की समता नहीं कर सकता लेकिन वह उस पर्वत का अंग बन सकता है और गुरु भी प्रतीक्षा करते रहते हैं कि कब उनका शिष्य दिव्य पथ पर चलने की उत्कण्ठा से भर जाएगा। वह तैयार हुआ नहीं कि गुरु कृपा हो गई। **संकल्प होंठों से हृदय तक पहुंचा नहीं कि जीवन में गुरु आगमन हो गया, धरती तपी नहीं कि वर्षा की एक बूंद आकर उसे भिगो गई!**

गगन तो सदा से प्रतीक्षा करता ही रहता है कि कोई अपना अस्तित्व खो रही बूंद भाप बन कर उठे और वह उसे अपने वक्षस्थल से लगा ले, रुई के कोमल जैसे बादलों में बदल दे, जो उसके वक्षस्थल पर स्वप्नों की तरह तिरता रहे, हल्का और कोमल बन कर। गुरु - शिष्य सम्बन्ध भी आकाश और मेघ का ही सम्बन्ध है इसी से **मेघ समाधि** की संज्ञा हुई— मेघ जो घना हो आकाश का एक भाग हो और जिसमें गर्जन हो! ऐसी ही काली उमड़ती-घुमड़ती घटाएं, शिष्यों के ऐसे समूह , ऐसे ही मेघों की प्रतीक्षा में यह धरती तप कर चिरव्याकुल हो गई है

यही समर्पण का अर्थ है!

क्षणे क्षणे यन्नवताम् उपैति तदेव रूपं रमणीयतायः

जो क्षण - क्षण में परिवर्तित हो रहा हो केवल वही रूपवान है, वही सौन्दर्यवान है और ऐसा जीवन में दो स्थानों पर ही दिखाई देता है - या तो प्रकृति के मध्य या सद्गुरु के संग। प्रकृति वही रहती हुई(हमारे - आपके शब्दों में जड़ रहती हुई) भी प्रतिक्षण अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्ण समर्थ होती ही है। ऐसा इसलिए कि उसमें क्षण-क्षण परिवर्तित हो जाने की कला घुली - मिली है। पत्ती एक क्षण एक ढंग से झूमती है और ठीक अगले ही पल दूसरे ढंग से, चांद का प्रकाश एक दिन कुछ और होता है और दूसरे दिन कुछ और, आसमान की रंगत कभी किसी रंग में रंग जाती है और दूसरे ही दिन नए ढंग में, मन इसी से प्रकृति को निहारते हुए भी कभी थकता नहीं। **एक नारी की तरह प्रकृति अपने वस्त्र नित्य और नूतन ढंग से बदलती ही रहती है।**

सद्गुरु भी ठीक प्रकृति के समान ही प्रतिक्षण अपना स्वरूप परिवर्तित करने में समर्थ होते हैं। प्रकृति से एक रस होते हैं, प्रकृति उनकी चेरी होती है। उनकी आंखों में स्वच्छ आकाश की नीलिमा फैली होती है, तो सारे शरीर से दिव्य गन्ध मलय पवन की भांति प्रतिक्षण निःसृत होती रहती है। **उनके हास्य में सरस, सघन, लचीली टहनियों की कोमलता होती है, तो पुष्प की पंखुड़ियों की भांति जिनके श्रीमुख से आशीर्वचन भी शिष्य पर बरसते ही रहते हैं।**

कभी वे पिता रूप में दिखाई देते हैं तो अगले ही क्षण मातृ रूप के वात्सल्य से भरे हुए। कभी हंसकर सखा बन कर हालचाल भी पूछते चलते हैं और बन्धु बनकर जीवन के गोपनीय पक्षों में सलाहकार व सहायक भी बन जाते हैं और ठीक उन्हीं क्षणों में गुरु स्वरूप में आगे - आगे मार्ग बताते चलते हैं, पीछे से सहायक बनकर साथ - साथ चलते हुए हौसला और ढाढ़स भी देते जाते हैं, जीवन के पथ पर भी और आध्यात्मिकता की खड़ी चढ़ाई पर भी।

इसी से प्रत्येक व्यक्ति यह कहते हुए नहीं तृप्त होता कि गुरुदेव को केवल और केवल वही वास्तविक रूप से जानता है! क्योंकि पूज्य गुरुदेव का व्यक्तित्व ही प्रकृति के समान इसी प्रकार से है, जो प्रत्येक को आश्वस्ति व सन्तोष देने में सहायक है। समाज के अनेक वर्गों के व्यक्ति उन्हें अलग - अलग ढंग से देखते आए हैं और जिसके मानस में जो छवि बनी उससे अलग हटकर वे दूसरे रूप की कल्पना भी नहीं करना चाहते।

वस्तुतः गुरुदेव से हम अपनी मन की वृत्तियों के अनुसार ही साक्षात्कार करते हैं और यह उनकी पूर्णता है कि प्रत्येक को अपनी मनचाही छवि उनमें मिल जाती है। किसी ने उनमें कृष्ण को देखा और किसी ने उनमें साक्षात् शिव को। एक व्यक्तित्व की विराटता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है? प्रकृति भी इसी प्रकार सभी को अपने आपमें समेट लेती है। जिस प्रकार समुद्र पूर्ण वेग से उमड़ता हुआ अपनी फेनिल तरंगों के साथ सारे सूखे तट को अपने हृदय से लगा लेना चाहता है, उसी प्रकार गुरु की फैली हुई बाहें भी अपने प्रत्येक शिष्य को सीने से लगाने के लिए, उसको भिगो देने के लिए निरन्तर उमड़ती-घुमड़ती ही रहती हैं। **उनके सारे शरीर और आंखों से इन्हीं मौन तरंगों का वेग आकर प्रकृति के समान सरस और चैतन्यता देने वाला होता है।**

केवल व्यक्तित्व के ही नहीं, ज्ञान-विज्ञान के भी अनेक पक्ष उनके व्यक्तित्व में यों समाहित होते हैं कि वे उनके द्वारा ही उद्भूत प्रतीत होते हैं, चाहे वह ज्योतिष की बात हो या तंत्र की। मंत्र विज्ञान की जटिलताएं हों या आयुर्वेद का व्यापक क्षेत्र — भारतीय ज्ञान के तो अनेक पक्ष हैं और वे सभी पूज्य गुरुदेव के विराट ज्ञान रूपी शरीर में अंगों की ही भांति स्पष्ट होते हैं।

ऐसे विराट व्यक्तित्व के स्वामी, प्रेम की सरसता में आपूरित, करुणा से आर्द्रवान, ममता और स्नेह से युक्त, ज्ञान - विज्ञान के मूर्त व्यक्त रूप पूज्य पाद गुरुदेव के भौतिक जीवन का यह साठवां वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। **हमारी संस्कृति की परम्परा के अनुसार उत्सव का वर्ष!** उनके विराट व्यक्तित्व की कल्पना तो हम

उनकी आंखों में स्वच्छ आकाश की नीलिमा फैली होती है तो सारे शरीर से अष्टगंध प्रतिक्षण सुगन्धित मलय पवन की भांति निःसृत होती रहती है। हास्य में सरस, सघन लचीली टहनियों की कोमलता है तो पुष्प की पंखुड़ियों की भांति जिनके श्रीमुख से आशीर्वचन भी झरते रहते हैं- अपने शिष्यों पर प्रतिक्षण. . .

नहीं कर सकते और ऐसे व्यक्तित्व परम्पराओं में बांधकर समझे भी नहीं जा सकते किन्तु अपनी सीमित बुद्धि से और सामाजिक परम्परा का अवलम्बन लेते हुए यह वर्ष **हीरक जयन्ती** वर्ष के रूप में मनाने का निश्चय किया गया है।

पूज्यपाद गुरुदेव तो सजीव ग्रन्थ है उनके एक- एक दृष्टिपात और शब्द का कुछ अर्थ होता है। प्रतिपल मौन रहते हुए वे इतना कुछ कहते हैं जिससे उसके शिष्य रूपी ग्रन्थों में पृष्ठ दर पृष्ठ जुड़ते जाते हैं— पूज्यपाद गुरुदेव की कल्पना के जीवित ग्रन्थ! लेकिन यह हम सभी की पात्रता नहीं है कि उनके मौन को समझ सकें। उनके इंगितों को यथावत् समझ सकें, उनके द्वारा उच्चरित शब्दों को उस रूप में समझ सकें जिस रूप में उन्होंने उसे प्रकट किया है।

भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख पूज्यपाद गुरुदेव ने कभी अपने प्रवचन के मध्य किया था, और जिसकी प्रासंगिकता उनके प्रवचनों में भी निहित है ही. . .

. . . एक रात्रि का प्रवचन समाप्त होने पर भगवान बुद्ध ने कहा- अब सभी जाएं और अपना - अपना कार्य सम्पन्न करें। एक चोर भी कहीं से उस सभा में आ गया था उसने समझा भगवान बुद्ध का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका है और उसने एक के स्थान पर तीन चोरियां की! किन्तु एक सन्यासी ने उस रात्रि को विश्राम करने की अपेक्षा पूरी रात ध्यान और साधना में व्यतीत की।

फिर भी हमने प्रयास किया है कि प्रत्यक्ष और लौकिक रूप में उनका जो अंश हमें स्पष्ट हो सका, उसको संकलित करते हुए उनके विराट व्यक्तित्व की एक झांकी प्राप्त करते हुए, अपनी श्रद्धा और भावनानुसार उनके श्रीचरणों में पुष्पांजलि व्यक्त करें। यह वर्ष इसी कारण वश प्रत्येक सप्ताह एक विशेष कार्यक्रम द्वारा सम्पन्न किया जाना हमारी मनोकामना है, जो आप सभी के द्वारा, आप सभी के सक्रिय सहयोग से, योजनाबद्ध रूप ले सकेगा। *पूज्यपाद गुरुदेव के व्यक्तित्व से सम्बन्धित साधकों के अनुभव, पूज्यपाद गुरुदेव के विविध स्वरूपों की झलकी, संस्मरण, अनुभव इत्यादि का प्रकाशन, स्थान-स्थान पर समारोह - पूर्वक अभिनन्दन, उनका सादर आमन्त्रण, पत्र - पत्रिकाओं में पूज्यपाद गुरुदेव से सम्बन्धित विषय वस्तु का प्रकाशन, पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा प्रकट किए गए ज्ञान का संकलन, साधना - शिविरों का आयोजन, अभिनन्दन ग्रंथ की योजना, इन सभी कार्यों को मूर्त रूप देने के लिए संयोजन, तालमेल, समिति - निर्माण, आवश्यक धन संग्रह इत्यादि ऐसे पक्ष हैं, जिनके विषय में यदि साधक स्वयं चैतन्य होकर सोचे तो स्वतः ही नये- नये पक्ष अनुभव कर सकेगा।* होना तो यह चाहिए कि साधक व शिष्य स्वयं आगे बढ़ें, योजनाओं का निर्माण कर पूज्यपाद गुरुदेव के समक्ष उपस्थित होकर स्पष्ट करें कि उन्होंने इस वर्ष विशेष में क्या कुछ करने का निर्णय लिया है।
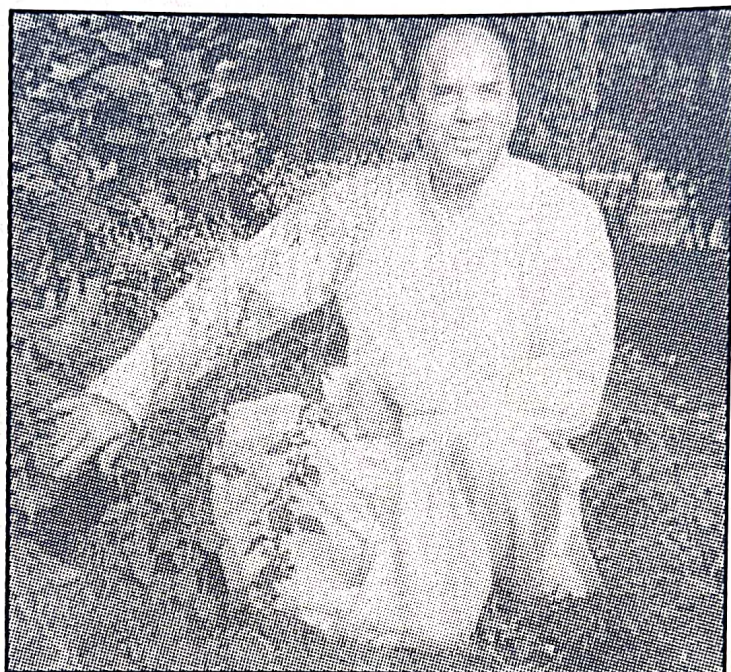
यदि आत्म चक्षुओं से इसे समझें तो हमारे आपके समक्ष तो पूज्यपाद गुरुदेव साकार रूप में उपस्थित हैं और ऐसे गुरुदेव को आपने समक्ष सादर आमंत्रित कर उनके चरण पखारने का क्या आनन्द होता है, इसे शब्दों और वाक्यों में नहीं समझाया जा सकता।

यदि कभी तर्क-कुर्तक छोड़कर ज्ञान चक्षुओं से उनको देखने का प्रयास करें तो वे अपनी करुणा और चैतन्यता में साक्षात् भगवान बुद्ध ही हैं, जिन भगवान बुद्ध ने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक कहा था कि बुद्ध कोई व्यक्ति नहीं, बुद्ध तो एक स्थिति है और पूज्यपाद गुरुदेव ने भी सदैव संकोच में भर कर यही कहा कि

" डॉ. नारायण दत्त श्रीमाली कोई गुरु नहीं है, यह तो एक शरीर का नाम है, इस शरीर के भीतर जो गुरुत्व है, जो ज्ञान की चेतना है, वही वास्तविक गुरु है।" किन्तु वह स्थिति तो एक प्रकाश बिम्ब है, ज्योति पुंज है, साक्षात् ब्रह्मत्व है, जिसे आवरण रूप में किसी व्यक्तित्व के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है और यही पूज्यपाद गुरुदेव का यथार्थ परिचय है। वह आदि ज्योति, वह निर्मल प्रकाश ही उनका वास्तविक स्वरूप है, जो कहीं ज्योतिषी के रूप में प्रबुद्ध हुआ तो कहीं तंत्र के रूप में प्रकट हुआ, वे ही मंत्रवेत्ता बने और आयुर्वेज्ञ भी, क्योंकि वे एक अस्थि चर्म की देह मात्र नहीं है और न एक आत्मा मात्र। वे सर्वभूतात्मा है, जिस गुरुत्व की स्तुति में कहा गया है-

नमो स्तवन्नताय सहस्र मूर्तयै सहस्र पादाक्षि शिरोरुहावे
सहस्र नाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्र कोटि युगधारिणे नमः
नमः कमलानाभाय नमस्ते जलशायिने
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोऽस्तुते
वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयं
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तुते।।

यह हम शिष्यों का विनम्र प्रयास है कि ऐसे व्यक्तित्व के इस धरा पर आगमन को उत्सवमय बनाएं और जो अमृत हम सभी शिष्यों ने चखा है, उसे दूसरों को भी बताएं। इसमें लेन-देन जैसी कोई बात नहीं है, इसमें तो आलोचना ही आलोचना ही मिलनी है। इन आलोचनाओं के मध्य में भी यदि कोई व्यक्तित्व चैतन्यता प्राप्त करने का आग्रही है, अमृत - पान करने का इच्छुक है, इस धरती पर केचुएं की तरह रेंगने से उठकर निर्द्वन्द उन्मुक्त आकाश में उड़ने की लालसा लिए हुए कुछ ढूंढ रहा है, तो हमें सभी आलोचनाएं स्वीकार्य होंगी, यदि एक व्यक्ति को भी अमृत का स्वाद मिल सका तो हमारा प्रयास सफल होगा। यह तो समुद्र मन्थन की क्रिया है, विष के समुद्र का मंथन है, इसी को पत्रिका के माध्यम से, शिविरों के माध्यम से और भी कई माध्यमों से मथा जा रहा है, जिसमें अमृत कण भी छलके हैं। **जो इन अमृत कणों को चख चुके हैं हम उन्हें ही आवाज दे रहे हैं कि वे अपने रसास्वादन को समाज के समक्ष व्यक्त करें।**

पूज्यपाद गुरुदेव के विविध स्वरूपों का परिचय पत्रिका के माध्यम से समय - समय पर प्रकाशित होता रहा क्योंकि उनके किसी एक अंश से भी कोई आकृष्ट हो सका, समझ सका कि ऐसा तो युगों - युगों में होता है कि इतना अधिक ज्ञान, इतनी अधिक चेतना, करुणा, अपनत्व और हजारों- लाखों को एक साथ ले चलने की क्षमता किसी एक में होती है, तो हमारा प्रयास सार्थक हो जाएगा। **एक व्यक्ति का खड़ा होना भी उत्सवमयता प्रारम्भ होने की पूर्ण स्थिति है। टहनी पर जब एक पुष्प खिलता है तो बगल की अवगुंठित कली स्वयमेव ही निद्रा छोड़ खिलने की ओर बढ़ ही जाती है।**

यही प्रकृति का शाश्वत नियम है!

गुरु का सही परिचय प्रकृति ही है। प्रकृति के माध्यम से ही उनका सही परिचय प्राप्त किया जा सकता है। जब व्यक्ति अपनी सामान्य जीव - अवस्था से उपर उठता हुआ साधक बनता है, शिष्य बनता है, तभी उसे जीवन के और गुरु के विभिन्न रंग, विभिन्न आयाम देखने को मिलते हैं, निहारने की कला आती है और अपने गुरुदेव को समझने की शैली विकसित होती है, तब उसके लिए सारा प्रकृति का व्यापार उसी विराट पुरुष की प्रार्थना हो जाती है। वह देखने लगता है कि वह अकेला ही नहीं उसके साथ - साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नित्य प्रार्थना में तल्लीन है और **ऐसा देखना ऐसा अनुभव करना ही अनहद का श्रवण है।** जो वृक्षों की झूमती टहनियों व बहते जल की कल-कल ध्वनि से अपने अन्दर ही छुपी सुप्त वीणा को झंकृत कर देता है। तब उसकी दृष्टि सामान्य दृष्टि नहीं रह जाती, वह आम व्यक्ति की तरह जीवन की स्थितियों को नहीं देखता। वह गुरु को एक देह के रूप में नहीं देखता, वह उन्हें आत्म स्वरूप में देखता है। उसका द्वैत भाव समाप्त होने लगता है। **वह गुरु के सामने खड़ा होता है तो उसे ऐसा आभास होता है मानों वह एक शुद्ध निर्मल दर्पण में अपना ही चेहरा देख रहा हो।** उसका व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है और गुरु का व्यक्तित्व ही उसका व्यक्तित्व बन जाता है। वह एक ऐसी उन्मुक्तता में विलीन हो जाता है जहां किसी भी पद या सम्बन्ध का अर्थ रह ही नहीं जाता, क्योंकि जिन पदों व सम्बन्धों के द्वारा कुछ व्यक्त किया जा सके वे सब कुछ बौने से सिद्ध होने लगते हैं और सम्बन्धों की संज्ञा की आवश्यकता रह भी कहां जाती है? सम्बन्ध तो जब दो होते हैं तभी व्यक्त किए जाते हैं, **जहां केवल एक का ही अस्तित्व हो, जहां केवल गुरुदेव का व्यक्तित्व ही आकर व्याप्त हो गया हो, वहां शिष्य की संज्ञा भी आवश्यक नहीं रह जाती।** जिस प्रकार प्रकृति स्पन्दित रहती हुई उसी विराट की अभ्यर्थना में सदैव तल्लीन रहती है, शिष्य भी उसी प्रकार प्रति क्षण अभ्यर्थना में तल्लीन हो जाता है, और यही जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। तब वह भी सौन्दर्यमय हो जाता है, रूपमय हो जाता है और अपने गुरु की तरह, प्रतिक्षण प्रकृति की तरह, बदलने की कला आत्मसात कर लेता है। यह ऐसे ही प्रकृतिमयता के आन्दोलन को प्रारम्भ करने का वर्ष है। प्रकृतिमय हुए नहीं कि सुगन्धित पवन चलने ही लगेगी, कोमल अंकुर फूटने लगेंगे, पुष्पों के खिलने की बात होगी और ऐसे हरे भरे विश्व पर ही आनन्द के पक्षी आकर कलरव का संगीत उन्मुक्त पंखों की फड़फड़ाहट शोर के साथ भर देंगे, जिसमें जीवन की धड़कन होगी। <u>हम ऐसे ही विश्व की रचना करने में आपको आमंत्रण दे रहे हैं।</u>

गुर्वष्टकम्

श्री सद्गुरवे नमः

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

षडंगादि वेदो मुखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु भक्तो न चान्यः।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

यशो मे गतो दिक्षु दानप्रतापाज्जगद्वस्तु सर्वं करे मत्प्रसादात्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

न भोगो न योगो न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वदन्ये।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यक् समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्॥

गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद्वाछितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम्॥

(इति श्रीमच्छकराचार्य कृतं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम्)

श्री सद्गुरु को नमस्कार है! आचार्य शंकर कहते हैं कि यदि शरीर सुन्दर, स्त्री भी सुन्दर, अद्भुत, विशद यश और सुमेरु पर्वत के समान विपुल धन प्राप्त है, पर मन श्रीसद्गुरु के चरण कमल में नहीं लगा तो उससे क्या लाभ? जिसे स्त्री, धन, पुत्र-पौत्र आदि सारा कुटुम्ब, गृह, बान्धव — ये सब भले ही प्राप्त हो गए, जिसके मुख में छहों अंगों सहित वेद तथा छहों शास्त्रों की विद्या विद्यमान है और सुन्दर गद्य -पद्यवाली कविता भी करता है, जिसका विदेशों में भारी सम्मान है स्वदेश में भी जो धन्य माना जाता है तथा जिसके समान दूसरा कोई सदाचारी भक्त नहीं है, भूमण्डल के सभी राज समूहों द्वारा जिसके चरण कमल सदा सेवित हैं, दान के प्रताप से दिशाओं में यश व्याप्त है, सारी वस्तुएं करतलगत हैं, चित्त न भोग में लगता है, न योग में, न धन में आसक्त होता है, फिर भी उसका मन यदि श्री सद्गुरु के चरणों में नहीं लगा तो उससे क्या लाभ? यद्यपि मेरा मन न वन में न अपने घर में, न कार्य में और न बहुमूल्य शरीर में ही लगता है, फिर भी यदि वह श्रीसद्गुरु के चरण कमल में न लगा तो उससे क्या लाभ? जिसका मन गुरु के समोचित वाक्यों में लगा हुआ है, जो पवित्रकाय, सन्यासी, राजा, ब्रह्मचारी या गृहस्थ इस गुर्वष्टक स्तोत्र का पाठ करेगा, उसे अभीप्सित 'ब्रह्म' नामक पद की प्राप्ति होगी।

शक्तिमय गुरु साधना

गुरु साधना के तीन प्रकार हैं– मांत्रोक्त, तांत्रोक्त एवं शक्तिमय। प्रथम दो क्रम भली - भांति सम्पन्न कर लेने पर ही साधक या शिष्य इस तीसरे क्रम में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है। पत्रिका के पिछले अंक में मांत्रोक्त एवं तांत्रोक्त गुरु साधना प्रकाशित की जा चुकी है और इसी क्रम में गुरु - शक्ति की साकार स्वरूपा ''श्री भुवनेश्वरी सपर्या'' के आधीन शक्तिमय गुरु साधना प्रकाशित की जा रही है। इन तीनों चरणों के पूर्ण होने के बाद ही शिष्य यथार्थ में ''साधक'' बनने की ओर अग्रसर हो पाता है जहां समस्त प्रकृति उसके समक्ष हाथ बांध कर खड़ी हो।

गुरु जीवन में न प्राप्त करने की वस्तु हैं न खोने की। न अर्जित करने की और न खर्च कर देने की। रोज - रोज की व्यापार बुद्धि हमारे ऊपर इतनी अधिक हावी हो चुकी है, हमारी आंखों में इतनी अधिक व्यवसायिकता उतर आई है कि हमने उन्हें भी एक व्यापारिक दृष्टि से देखने के प्रयास किए, लेकिन इससे जो सत्यता है उस पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

इन सामान्य चर्म चक्षुओं से तो हम अपने घर - परिवार और सगे सम्बन्धियों को ही नहीं पहचान सकते। हमारे प्रति उनके मन में क्या भावना है, कितना प्रेम है इसको ही नहीं आंका जा सकता, फिर एक विभूति को कैसे समझा जा सकता है? यद्यपि यह ईश्वर की हम पर असीम कृपा है, क्योंकि व्यक्ति इस जगत के छद्म और कपट व्यापार को यदि सही - सही जान ले तो उसका सारा हृदय ही घुट कर रह जाय कि **वह जिसे अपनी पत्नी कहता है, जिसे पुत्री कहता है, मां कहता है या भाई कह कर भाव - विभोर रहता है, वे सभी उससे कितनी अधिक दूरी पर खड़े हैं।** व्यक्ति इन सभी रहस्यों को कुछ तो न समझते हुए और कुछ जानबूझ कर अनजान बनते हुए एक भूल - भुलैया में भटक कर चला जाता है। अपने सारे अस्तित्व को दो मुट्ठी राख में बदल जाता है और जीवन में जो ऊंचाई प्राप्त कर सकता था, जो अनोखा आनन्द खुद प्राप्त कर सकता था और दूसरों को भी आनन्दित कर सकता था, वह अस्तित्व वर्षों के पृष्ठ बदलने के साथ गुमनामी में चला जाता है।

इस सम्पूर्ण यात्रा में, उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक और मृत्यु के उपरान्त अनन्त ब्रह्माण्ड में जाकर लाखों- करोड़ों आत्माओं के बीच में विलीन अस्तित्व को

सद्गुरु अपनी दृष्टि की सीमा में निरन्तर बांधे रखते हैं। उसके पुर्नजन्म की प्रतीक्षा करते रहते हैं और उचित समय आने पर कभी किसी घटना के माध्यम से, कभी किसी व्यक्ति के माध्यम से , कभी पत्रिका के माध्यम से, कभी किसी अन्य चैतन्य माध्यम से चेतना देकर जगाने का प्रयास करते हैं। अपने और उसके शाश्वत सम्बन्धों की याद दिलाना चाहते हैं, आघात देते हैं और स्नेह भी देते हैं लेकिन मनुष्य पुनः एक 'मैं' में खोया रहकर उसी स्थान पर चला जाता है, जहां तक पिछले जन्म में गया होता है। **जिस शरीर और सौन्दर्य का वह इतना भ्रम पाल कर रखे होता है वह तो मृत्यु के बाद उस मृत पशु से भी गया बीता होता है जिसकी चमड़ी से जूते बन जाते हैं। मुनष्य की तो चमड़ी तक मरने के बाद किसी काम नहीं आती।**

गुरु की तुलना वैद्य से की गयी है। सामान्य वैद्य दवा देने के बाद अपनी फीस लेकर अलग हो जाता है, मध्यम श्रेणी का वैद्य दवा देने के बाद भी यदा - कदा मिलने पर हालचाल पूछ लेता है, लेकिन उत्तम वैद्य रोगी के सीने पर चढ़कर उसको बिना कड़ी दवा पिलाए और स्वस्थ किए मानता ही नहीं। ठीक इसी प्रकार सामान्य गुरु, जिनकी आजकल बहुतायत दिखती है, वे कान में मंत्र फूंक कर देने के बाद अपनी दक्षिणा लेकर अलग हो जाते हैं। मध्यम श्रेणी के गुरु कभी - कभी शिष्य का हालचाल भी पूछ लेते हैं, लेकिन सद्गुरु अपने शिष्य के सीने पर चढ़कर उसे कड़वी दवा पिलाए बिना, उसे मुक्त किए बिना विश्राम लेते ही नहीं। जाहिर है ऐसा करने में शिष्य के अहं को भी चोट पहुंचेगी, उसे कष्ट और वेदना होगी लेकिन सद्गुरु जानते हैं कि यदि मेरे इस शिष्य ने अपने को छलावे में रखा और मैंने भी इसे आघात नहीं दिया तो इसका एक जन्म और व्यर्थ चला जाएगा।

और शिष्य को भी इसी आपा - धापी से भरे जीवन में एक क्षण रूकना ही होगा, सद्गुरु की ऊंगली पकड़ कर उस मार्ग पर चलना होगा जहां अपने आत्म को चैतन्यता मिल सके, तृप्ति मिल सके। शीतलता मिल सके और सुखद छांव भी मिल सके। ऊंचे पर्वतों की यात्रा करने पर प्रारम्भ में बहुत से रंग - बिरंगे फूलों की घाटियां मिलती है लेकिन ठेठ ऊंचाई पर जाकर अकेले देवदारु ही मिलते हैं। **घाटियों के फूलों के रंग लुभावने होते हैं, लेकिन उनमें छांव नहीं होती। छांव उसी देवदारु के नीचे मिलती है जो आठ हजार फिट से नीचे उगता ही नहीं। तभी उसे देवताओं का वृक्ष कहा गया है और ऊँचाई पर जाकर ही देवत्व के दर्शन व प्राप्ति सम्भव होती है।**

इसमें कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं है और इस गुरु मार्ग में घर - परिवार से अलग हटकर एकान्त में धूनी भी नहीं रमाना है। वह तो एक दूसरे किस्म का छलावा हो जाएगा, लेकिन सहारा लेना है, जिससे अपनी अन्तश्चेतना को भी पूर्णता मिल सके। यह जीवन, अगला जीवन और उससे भी अगला जीवन निरन्तर एक अन्तश्चेतना की ही यात्रा है। ऐसी अन्तश्चेतना जो शुद्ध व निर्मल होकर ईश्वर से मिलने को आतुर है और इसी चेतना को कहीं **'आत्मा'** कहा गया है तो कहीं **'जीव'** और कहीं **'प्राण'**। लेकिन मूलरूप में यह एक अभिव्यक्ति ही है उसी विराट तेजपुंज की, जिसका बोध होता है **गुरु साधना के माध्यम से और व्यक्ति शनैः शनैः अपने अन्दर जाग्रत होते गुरुत्व का साक्षात् करता है। पूर्ण गुरुत्व से साक्षात्कार कर, उससे एकाकारिता प्राप्त कर सुख व सन्तोष का लाभ प्राप्त करने लगता है** और तब उसके सामने जीवन की घटनाएं चलचित्र की तरह घटने वाली मात्र हो जाती है, जिन्हें वह एक ओर खड़े - खड़े देखता रहता है। फिर व्यक्ति स्वयं **'कर्त्ता'** भी बन जाता है, अर्थात ऐसा क्षमता प्राप्त कर लेता है कि जीवन की स्थितियां उसकी इच्छानुसार ही बने और बिगड़ें और वही वास्तविक **'अकर्त्ता'** व उदासीन भी हो जाता है। क्योंकि कर्त्ता बनते ही, शक्तिमय होते ही उसमें यह समझ भी आ जाती है कि इस नित्य जगत - कार्यों और दैनिक प्रपन्चों से अलग हटकर वास्तविक शांति तो कहीं और है।

इसी से गुरु - मार्ग व गुरु - धर्म न तो संसार से अलग करता है न संसार में लिप्त करता है। बस व्यक्ति को आत्मबोध करा देता है। जिस मझिम्म पतिपदा अर्थात् मध्यम मार्ग का संकेत भगवान बुद्ध ने किया था, गुरु धर्म उसी मार्ग पर चलने का व्यवहारिक और साधनात्मक मार्ग प्रस्तुत करता है।

श्री गुरुदेव अपने स्वरूप में शिवमय भी है और शक्तिमय भी। इसी से पूर्ण हैं। वे दोनों के समन्वित स्वरूप ही हैं। गुरु - साधना की अनेक विधियां हैं। जहां गुरुदेव की शक्तिमयता और शिवमयता की समन्वित साधना होती है, वहीं वास्तव में पूर्णता निर्मित होती है। इस अंक में हम एक ऐसी ही साधना प्रस्तुत कर रहे हैं जो शिवमयता की और शक्तिमयता की सम्मिलित साधना है। गुरु - तंत्र में इसे **'मिथुन - चक्र साधना'** की संज्ञा से जाना गया है क्योंकि श्री गुरुदेव के विग्रह में शिव व शक्ति स्वरूप परस्पर इस प्रकार घुले - मिले हैं जिनका विभेद कर पाना अत्यन्त कठिन है और जिनकी यह संयुक्त साधना ही फलप्रद भी होती है।

यह वर्ष पूज्यपाद गुरुदेव की हीरक जयन्ती का वर्ष है और आशीर्वाद के स्वरूप में पूज्यपाद गुरुदेव ने इस वर्ष अपने प्रत्येक शिष्य को साधनात्मक रूप से पूर्णता दिलाने का वचन दिया है। व्यक्ति की अपने संस्कारों के अनुसार जिस साधना में रुचि हो जिसे वह करने के लिए स्वतन्त्र है लेकिन गुरु - साधना ही प्रत्येक साधना का मूल होती है, और इसी कारणवश इस जन्मोत्सव माह में ऐसी दुर्लभ साधना प्रकाशित की जा रही है जिसको सम्पन्न कर साधक पूरे वर्ष

भर के लिए आधार निर्मित कर सकता है। यदि २१ अप्रैल से पूर्व ही इस साधना को सम्पन्न कर लिया जाए तो व्यक्ति को २१ अप्रैल के महत्वपूर्ण दिवस पर पूज्य गुरुदेव द्वारा दी जाने वाली चैतन्य दीक्षाओं का सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकेगा, अन्यथा **इस वर्ष के गुरु जन्मदिन महोत्सव से लेकर अगले वर्ष के गुरु जन्मदिन महोत्सव के मध्य तो यह साधना सम्पन्न करना प्रत्येक शिष्य के लिए अनिवार्य है।**

किसी भी सोमवार अथवा शुक्रवार की रात्रि में दस बजे के पश्चात् वातावरण शांत हो तब निश्चिंत भाव से इस साधना में संलग्न हों। पूजन की सभी आवश्यक सामग्री पहले से ही साथ लेकर बैठे क्योंकि बीच में उठना साधना में विघ्न माना जाता है जिससे फल प्राप्ति में न्यूनता आती है। वस्त्र, आसन आदि शुद्ध श्वेत हो। अपने सामने एक चांदी या तांबे की बड़ी प्लेट रखें अथवा इनके अभाव में सफेद वस्त्र पर ही केसर से निम्न मिथुन - चक्र का निर्माण करें।
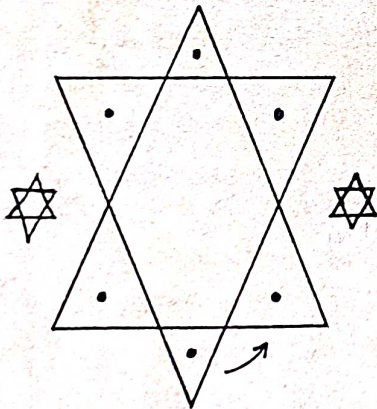
उपरोक्त मिथुन चक्र के अगल - बगल जहां दो अन्य लघु मिथुन चक्र चिन्हित किए गए हैं, वहां पूज्य गुरुदेव की **चरण पादुका** स्थापित करनी है। साधक के दाएं हाथ की ओर पूज्यपाद गुरुदेव की दांयी पादुका तथा वाम हस्त की ओर वाम पादुका स्थापित होनी चाहिए। अब इस मिथुन चक्र के मध्य में सफेद फूलों, श्वेत चन्दन व अक्षत से पूजन कर निम्नलिखित ध्यान का उच्चारण करें —

सहस्रारे महापद्मे किञ्जल्क - गण - शोभिते,
पद्म-राग-समाभासां रक्त - वस्त्र - सुशोभिताम् ।
रक्त - कंकंण - पाणिं च रक्त - नूपुर -शोभिताम्,
शरदिन्दु-प्रतीकाश-रक्तोद्भासित-कुण्डलाम् ।
तरुणारूण-कल्पाभां करुणा - पूर्ण - लोचनाम्,
वराभय - करां शान्तां स्मरामि नव - गौरवीम् ।
स्व-नाथ-वाम भागस्थां प्रफुल्ल - पद्म - पत्राक्षीम्,
प्रसन्न - वदनां क्षीण मध्यांध्याये शिवां गुरुम् ।।

उपरोक्त ध्यान अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें गुरुदेव का शक्ति स्वरूप में (स्त्री रूप में) ध्यान किया गया है अर्थात् उनसे निरन्तर अभिन्न रहने वाली शक्ति का ही ध्यान किया गया है। इस ध्यान के उच्चारण के बाद श्वेत चन्दन व केसर की पंखुड़ियों से संक्षिप्त गुरु पादुका पूजन करें तथा निम्न गुरु पादुका मंत्र का ११ बार उच्चारण करें —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौ हंसः
शिवः सोऽहं हंसः स्वरूप निरूपण
हेतवे श्री गुरुवे नमः।।

अब उपरोक्त मिथुन चक्र में सबसे नीचे के त्रिभुज में एक शक्तिचक्र चढ़ाते हुए तीर की दशा में अर्थात् बांयी ओर से दाहिनी ओर बढ़ते हुए क्रमशः प्रत्येक त्रिभुज में (त्रिभुज का स्थान मिथुन चक्र में बिन्दु से प्रदर्शित है) एक **शक्ति चक्र** चढ़ाते हुए निम्न प्रकार से क्रमशः उच्चारण करें—

ह्रीं गायत्री सहितं ब्रह्म - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ह्रीं सावित्री सहितं विष्णु - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ह्रीं सरस्वती सहितं रुद्र - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ह्रीं लक्ष्मी सहितं धनपति - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ह्रीं रति सहितं काम - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः
ह्रीं पुष्टि सहितं गणपति - श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

इस षटकोण पूजन के पश्चात् मिथुन चक्र के दोनों ओर स्थापित गुरु चरण पादुकाओं का संक्षिप्त पूजन कर दायीं ओर की पादुका पर एक श्वेत पुष्प निम्न मंत्र के साथ चढ़ायें —

ह्रीं वसुमति सहितं पद्मनिधि श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

इसी प्रकार बांयी ओर की पादुका पर भी निम्न मंत्र के द्वारा एक श्वेत पुष्प चढ़ायें —

ह्रीं वसुधारा सहितं शंखनिधि श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः

पूज्य गुरुदेव के शिव - शक्तिमय स्वरूप का संयुक्त पूजन पूर्ण हो जाने के पश्चात् **शुद्ध स्फटिक माला** से निम्न मूल मंत्र की एक माला मंत्र जप करें —

मंत्र -

ऐं ह्रीं स्वयम्भू लिंगमाश्रितायै
कामकलान्विते स्वाहा।।

मंत्र जप के उपरान्त सभी शक्ति चक्र सम्भाल कर एक डिब्बी में रख लें, जिससे यह शक्तियां घर में चिरस्थायी बनी रह सकें। विशेष अवसरों पर, गुरु पुष्य नक्षत्र के दिवस पर इस साधना को पुनः सम्पन्न कर लेना चाहिए। गुरु पादुकाओं को पूजा स्थान में स्थापित कर उनके समक्ष गुरु पादुका मंत्र का नित्य प्रातः ११ बार उच्चारण कर लेना सौभाग्यदायक माना गया है और व्यक्ति धीमे - धीमे अपने दैनिक जीवन में, मानसिक चिन्तन में, साधनाओं में आने वाले अनुकूल परिवर्तनों को स्वयं समझने लगता है जिससे अपूर्व मानसिक शांति की प्राप्ति होती है तथा गुरु साधना के सभी लाभ हस्तगत होने लगते हैं।

धनदा तंत्र दरिद्रता को जड़-मूल से समाप्त करने का तंत्र

लक्ष्मी प्राप्ति के कई उपाय हैं मंत्रात्मक भी, स्तोत्र पाठ भी और सामान्य पूजन भी किन्तु तंत्र का प्रयोग करना आवश्यक होता है। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए तंत्र का निर्माण किया गया और उन में प्रारम्भिक तंत्र धनदा तंत्र ही माना गया।

जीवन के सभी कार्यों में कम समय में ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेने के लिए क्रमबद्ध तरीका अपनाना पड़ता है। साधनाओं के क्षेत्र में साधनाओं को भक्ति से जोड़कर देखने के स्थान पर भावना से जोड़कर देखना चाहिए। भक्ति और भावना में सूक्ष्म भेद है। **भक्ति एक नितान्त स्वार्थ परक क्रिया है, जबकि भावना अपने इष्ट या देवी - देवता में सहज, सम्मान और प्रेम की स्थिति है। साधक को अपने जीवन में भावना प्रधान ही होना चाहिए।**

साधनाओं का निश्चित विज्ञान है और उसमें निरन्तर लघु रूप खोजे जाते रहते हैं। चाहे वह यंत्रों की बात हो अथवा किसी तांत्रिक पद्धति की। ऐसे मंत्रों की संरचना ढूंढने के प्रयत्न किए जाते रहते हैं जो शीघ्र प्रभावोत्पादक हों।

जहां अर्थोपार्जन की बात आती है वहां यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति क्रम बद्ध उपाय कर अपने जीवन में स्थान दे, क्योंकि जितना अधिक प्रयास अर्थोपार्जन करने के लिए करना पड़ता है और जितना अधिक उपायों का प्रयोग व्यवहार में लाना पड़ता है उतना अधिक सम्भवतः जीवन के किसी भी पक्ष में नहीं करना पड़ता। यदि व्यक्ति साधनात्मक रूप से किसी उपाय व मदद को प्राप्त नहीं करता अर्थात साधनात्मक रूप से लक्ष्मी तंत्र का अवलम्ब नहीं लेता तब भी व्यवहारिक रूप से तो उसे
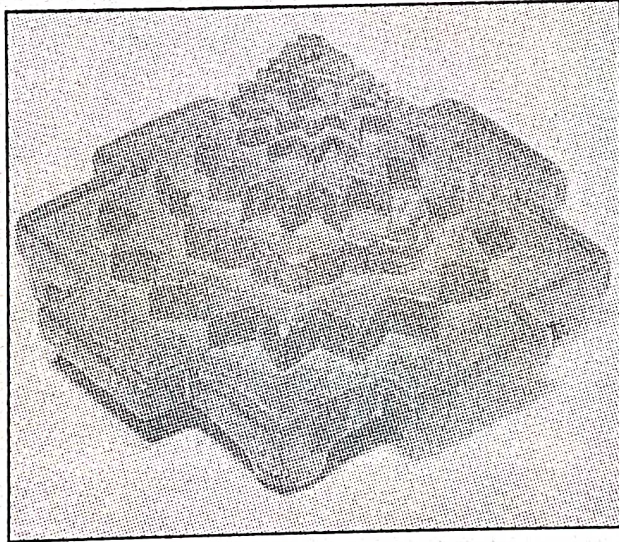
जोड-तोड करनी ही पडती है। अर्थात साधनात्मक नहीं तो 'व्यवहारिक तंत्र' का प्रयोग करना पडता है। साधनात्मक रूप से तंत्र का प्रयोग करना तो फिर भी सहज है जबकि इस व्यवहारिक तंत्र में तो न जाने कैसे - कैसे प्रयास करने पड़ते हैं। किस तरह से युक्तियां बैठा कर वैध-अवैध रूप से धन प्राप्त करने की प्रयास किए जाते हैं और निरन्तर इधर से उधर दौड़ते रहने में मानसिक रूप से उलझे रहने में वह आनन्द तो समाप्त ही हो जाता है, जिसके लिए इतना परिश्रम करके हम धन बटोरते हैं।

जीवन में धन के लिए अत्यधिक हाय - तौबा न हो, **धनदा तंत्र** इसी का उपाय प्रस्तुत करता है। **धनदा तंत्र** लक्ष्मी साधनाओं का एक सिद्ध सफल तंत्र माना गया है। **जो मूलरूप से भगवती दुर्गा की शक्तिमयता का ही विशिष्ट प्रयोग है।** भगवती दुर्गा अपने मूल स्वरूप में शक्ति प्रधान है किन्तु भगवती दुर्गा की ही एक विशेष पद्धति से साधना कर जीवन में अर्थ लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।

धनदा तंत्र की सबसे विशेष बात यह है कि यह जीवन में दरिद्रता का विनाश जड़मूल से कर देता है। दरिद्रता का अभिशाप व्यक्ति का सारा व्यक्तित्व इस प्रकार से ग्रसित कर लेता है कि वह असमय ही जीवित रहते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। दरिद्रता के द्वारा व्यक्ति का जीवन तो अभावग्रस्त होता ही है उसका चिन्तन, आध्यात्मिकता कुन्ठित और धुंआ देती हुई हो जाती है। यदि ऐसी स्थिति पर समय रहते नियन्त्रण न प्राप्त किया जाय तो व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जीवन व साथ ही उसका परिवार भी असमय समाप्त हो जाने की स्थिति में आकर खड़ा हो जाता है। **धन के अभाव**

में होने वाली नित्य गृह कलह से उब कर व्यक्ति अपने जीवन से भी निराश हो जाता है।

प्रायः दुर्भाग्यवश, पूर्व जन्म कृत दोषों के कारण, व्यापार में अचानक घाटा आ जाने पर या व्यापार में ही किसी खरीद पर गलत निर्णय ले लेना, पार्टनर द्वारा धोखा दे दिए जाने पर, नौकरी छूट जाने पर, ऋण में डूब जाने पर या बेरोजगारी के कारण व्यक्ति के जीवन में ऐसी स्थितियां आ जाती है कि उसे कोई भी मार्ग नहीं सूझता और ऐसी स्थिति में प्रारम्भिक आवश्यक होती है कि उसका अभाव और दरिद्रता समाप्त हो। जो अशुभ उसके ऊपर मंडरा आया है, जो दैन्य और कष्ट उसके पूरे परिवार को त्रस्त कर रहा है, वह समाप्त हो और तब निश्चित रूप से धनदातंत्र की यह साधना ही लाभदायक सिद्ध होती है।

जीवन में ऐश्वर्यवान बनना, सम्पन्न बनना, भौतिक पक्षों से सुखी व सन्तुष्ट होना अतिआवश्यक है। किन्तु उसको एक लम्बी छलांग मारकर एकाएक नहीं प्राप्त किया जा सकता और विशेष रूप से जहां जीवन में उपरोक्त दशाएं आकर जीवन को ग्रसित कर गई हो वहां **धनदा तंत्र** का यह प्रयोग ही प्राथमिक स्थिति है। जब तक दरिद्रता का विनाश नहीं होगा, जब तक प्राथमिक साधना नहीं होगी तब तक पूर्ण सुख और ऐश्वर्य की स्थिति कहां से निर्मित होगी? **साधक इस बात की उपेक्षा कर जाते हैं** और एकाएक बहुत कुछ प्राप्त करने के उपाय ढूंढने में उल्टे असफल ही हो जाते हैं।

धनदा का स्वरूप अत्यन्त सौन्दर्यमय और वरदायक प्रभाव से युक्त है। वे शक्ति स्वरूपा होते हुए भी भगवती पद्मा के समान ही सौन्दर्यमयी एवं तेजोमयी है।

किसी भी बुधवार की रात्रि में दस बजे के पश्चात् लाल वस्त्र धारण कर अपने सामने आटे की एक छोटी सी ढेरी बनाकर और उस पर ऊंगलियों से षटकोण खीचें, षट्कोण के मध्य में "धं" बीज मंत्र लिखकर एक लाल फूल चढ़ाएं तथा एक **सौभाग्य फल** चढ़ा कर **मूंगे की माला** से निम्न मंत्र की एक माला मंत्र जप करें —

मंत्र -

ॐ श्रीं धनदायै ह्रीं धनेश्वर्यै नमः

यह ग्यारह दिनों का प्रयोग है और प्रत्येक दिन एक नए सौभाग्यफल का प्रयोग करना है। प्रतिरात्रि की साधना के उपरान्त दूसरे दिन सुबह वह आटा जिस पर यंत्र बनाया था एवं सौभाग्य फल किसी को दान में दे दें, और ऐसा नित्य ग्यारह दिन तक करें। अन्तिम दिन आटे एवं सौभाग्य फल के साथ जिस माला द्वारा मंत्र जप किया है उसे भी कुछ दक्षिणा के साथ किसी को दान में दे दें। **ऐसा करने से घर की सम्पूर्ण दरिद्रता चली जाती है और मानसिक शांति का उदय होता है।**

उपरोक्त मंत्र विशेष प्रभाव से युक्त है और भविष्य में भी नित्य प्रति इसका एक निश्चित संख्या में उच्चारण करते रहना चाहिए।

धनदा तंत्र का विशिष्ट प्रयोग

धनदा तंत्र, तंत्र की विशिष्ट साधना होने के साथ - साथ एक सम्पूर्ण साधना विधान भी है। एक विशिष्ट तंत्र ही है और प्रत्येक तंत्र की यह विशेषता होती है कि उसके क्रम जहां अपने- आप में सम्पूर्ण होते हैं वहीं प्रत्येक प्रयोग अगले प्रयोग से एक कड़ी के रूप में जुड़ा भी होता है। यदि साधक एक प्रयोग सम्पन्न करता है तो उसे प्रयास पूर्वक अगला प्रयोग भी सम्पन्न कर ही लेना चाहिए जिससे लाभ द्विगुणित हो सके।

धनदा तंत्र की प्रस्तुत साधना करने के बाद यदि साधक धनदा तंत्र में ही वर्णित यह विशिष्ट प्रयोग भी सम्पन्न कर लेता है तो पूजन का पूरा क्रम बन जाता है। बेल की लकड़ी के आठ अंगुल चौड़े तथा दस अंगुल लम्बे टुकड़े पर रक्त चन्दन से "ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा" लिख लें तथा किसी भी शुक्रवार की प्रातः स्थापित कर **कमल गट्टे की माला** से निम्न मंत्र बोलते हुए १०८ आहुतियां दें।

मंत्र -

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्रय दुःख भय हारिणी कात्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्र चित्ता।।

उपरोक्त मंत्र का उच्चारण शुद्धतापूर्वक करना आवश्यक है और साथ ही यदि सम्भव हो तो साधक धनदा देवी के प्रामाणिक चित्र को अपने सामने स्थापित कर यह साधना सम्पन्न करे।

इस साधना में कमल गट्टे की माला का एक - एक मनका तोड़ते हुए उपरोक्त मंत्र के साथ आहुतियां प्रदान करनी होती है।

वह काजल

- ईश्वर चन्द तिवारी
लखनऊ

सांवला रंग, छरहरा बदन, उन्नत उरोज, कामुकता से परिपूर्ण देहयष्टि, घोर काली आंखें, गहरी नीलाभ झील सरीखी प्रतीत हो रही थी. . .

. . . न जाने कब केलि वृक्षों से घिरा ''जादू ताल'' आ गया. . . सन्ध्या पर रात्रि का श्यामल आवरण गिर चला था. . .

मैं दिव्यानन्द से परिपूर्ण था!

आचार्य गहन तन्द्रा से जाग चुके थे किन्तु अभी तक योग निद्रा में लीन थे। सन्ध्या के उस मनोरम वातावरण में **जय महाकाली** का स्वर गूंजा। वे कुटी के अन्दर थे। मैं पहाड़ी के एक सिरे पर खड़ा अस्ताचलगामी सूर्य का अवलोकन कर रहा था। पश्चिम का आकाश नाना प्रकार के रंगों से भरा था। पक्षी बसेरे पर लौट रहे थे, चारों ओर ऊंची - ऊंची पहाड़ियों के बीच में एक ऊंची शिला पर उस सुनसान मनोरम स्थल में ताड़ के पत्तों से निर्मित वह छोटी सी कुटिया मात्र थी। सामने चौड़े साल और सुपाड़ी के वृक्ष थे। तलहटी में एक विशाल तालाब जिसका नाम था - ''जादू का तालाब''। उसके समीप ही एक आदिवासियों का गांव बसा था, उसे भी जादू ताल ही कहते थे।

आचार्य ने जोर से खखारते हुए गला साफ किया और मुझे आवाज दी - **ऐ छोरा, ले तू भी ले महाप्रसाद।**

मुझे यहां पर आए हुए लगभग एक वर्ष बीत चुका था। आचार्य की आज्ञा का पालन करते हुए मैंने कुटी में प्रवेश किया, और मैंने खप्पर में भरा द्रव्य एक ही सांस में गले के नीचे उतार लिया। एक अद्‌भुत अपूर्व आनन्द की अनुभूति मुझमें हुई। ऐसा लगा जैसे दिव्य शून्यता का आवरण चारों ओर छाने लगा हो। उस दिव्य नीरवता को कुछ युवतियों की खिलखिलाहट ने दूर किया। लड़कियों का समूह कुटी के द्वार पर ही रूक गया पर एक शोख विशाल नेत्र वाली रक्तिम अधर, गदराए यौवन से परिपूर्ण रमणी ने कुटी में प्रवेश कर आचार्य को प्रणाम किया।

जय महाकाली कह कर आचार्य ने उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया। मेरी ओर इशारा करके वे गम्भीर स्वर में बोले - **जा इस छोरे को आज ले जा।** मैं भौंचक्का अभी तक उसको केवल निहारे चला जा रहा था। आचार्य के इन शब्दों ने मुझे चौंका दिया और मैं एकटक उनकी ओर देखने लगा। अब की बार फिर उनका स्वर गूंजा - **जा छोरे जा।**

मैं चुपचाप यन्त्रवत् कुटी के बाहर आ गया। यों तो वह रमणी सुन्दरता की खान थी पर चलने पर और भी मादक लग रही थी। **चाल के सौन्दर्य की पराकाष्ठा मुझे आज उस युवती में अपूर्व रूप से दृष्टिगोचर हुई, जिसे आचार्य ने मृणी कह कर संबोधित किया था। सांवला रंग, छरहरा बदन, उन्नत उरोज, कामुकता से परिपूर्ण देहयष्टि, घोर काली आंखें, गहरी नीलाभ झील सरीखी प्रतीत हो रही थी।** उसकी सहेली जिसको मार्ग में उसने वेणी कहकर सम्बोधित किया था, वह भी रूप में किसी प्रकार उससे कमतर न थी पर मृणी का तो जवाब ही न था। सपेरे की बीन पर मंत्र मुग्ध सर्प की भांति मैं उसके पीछे चल रहा था। न जाने कब केलि वृक्षों से घिरा ''जादू ताल'' आ ही गया। इस पानी पर दिन में काई छाई रहती है, पर रात्रि के साथ ही काई छंटनी शुरू हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता मानों किसी ने उसको स्फटिक से लबालब भर दिया हो। बीच तालाब में लगता है जैसे चांद उतर आया हो, और उसकी दिव्य शीतल ज्योति से समस्त ताल जगमगा उठा हो।

नारी समूह के साथ संध्या के उस वातावरण में मैं ताल के किनारे खड़ा था। सन्ध्या पर रात्रि का श्यामल आवरण गिर चला था। मैं दिव्यानन्द से परिपूर्ण था।

ताल किनारे पहुंचते ही मृणी की मादक दृष्टि ने एक बार मुझे निहारा और सहसा मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं इस आकस्मिक स्पर्श से स्पंदित हो सिहर उठा। अपनी भाषा में उसने कुछ कहने का प्रयास किया। मैं उसका अर्थ न समझ पाया। हाथ छुड़ाते हुए मैंने कहा - **मंत्र नहीं. . .तंत्र. . .तंत्र।**

इतना सुनते ही उसने मेरा हाथ झिड़क कर कहा - **तो जा शंख फूंक. . . शंख बजा. . .** और मेरा हाथ पकड़ कर तालाब के पानी में उतार दिया।

मैं घुटने भर पानी में खड़ा था। उसने वेणी को अपनी भाषा में कुछ कहा और बस अगले ही क्षण वेणी ने पीली सरसों को पढ़कर मेरी ओर फेंका तो ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरे हाथ ऊपर करके किसी मजबूत रस्सी से बांध दिए हों।

मेरे चारों ओर बड़े - बड़े कछुए और मछलियां एकत्र होने लगे। एकाएक वे सब मेरी ओर लपकने लगे। मुझे लगा कि मेरा अन्तिम समय आ गया है। मृणी ने अंजलि में पानी भरकर फिर मेरे मुंह पर मारा. . . ऐसा लगा जैसे किसी ने बड़ा पत्थर ही मार दिया हो. . . मैं तिलमिला उठा।

मुझे आचार्य के दिए उन तीन कंकड़ों की याद आ गयी। मैंने उन्हें निकाल कर और अभिमंत्रित कर उन लड़कियों पर मारा तो मृणी, वेणी एवं एक अन्य लड़की असह्य पीड़ा से छटपटाती धाराशायी हो गई। वे लगभग बेहोश होने को थी।

मृणी चिल्लायी - **खोल दे वेणी, खोल दे इसे।**

जमीन पर पड़े पड़े ही वेणी ने काले सरसों पढ़कर मेरी ओर फेंकी. . . मैं एकदम से बन्धन मुक्त हो गया . . . चारों ओर घेराव किए कछुए और मछलियां भी पानी में खो गए। मैं तालाब से बाहर निकला और उन लड़कियों को भी मंत्र मुक्त कर दिया। मृणी ने उठ कर स्नेह से मेरे गाल पर एक थपकी देते हुए पूछा - **किसने सिखाया है तुम्हें यह मंत्र?**

- ये मैं तुम्हें क्यों बताऊं।

- अच्छा, मत बताओ, यह तुम्हारी परीक्षा थी. . . आओ आचार्य के पास चलें. . . और हम लोग आचार्य की कुटी की ओर चल पड़े। पहाड़ी की नीरवता अपूर्व थी। कुटी के पास पहुंचते ही आचार्य का गम्भीर स्वर गूंजा - **जय महाकाली।**

- आ गया छोरा तू . . . चल सारा सामान तैयार है. . . चल नदी की ओर चलें. . . और तुम लोग . . . तुम लोग भाग जाओ . . .।

धऽऽऽ च्च एक जोरदार आवाज गूंजी और लाश पृथ्वी पर सीधी खड़ी हो गई वृक्ष पर किसी पक्षी के चीखने का स्वर सुनाई पड़ा, मैंने उसके पैरों का काजल निकाल कर . . .

आचार्य ने उस युवतियों को भगा दिया और पुनः एक बोतल मदिरा खोलकर गट् - गट् कर गले के नीचे उतार दी। रात गहरा चली थी . . . हम लोग कुटी से निकल कर नदी की ओर चल पड़े थे. . . रात्रि के दस बजे थे . . . एक घंटे की यात्रा में ऊंची नीची पगडंडियों का पार करते हम नदी तट पर जा पहुंचे थे। चारों ओर गहन अंधकार व्याप्त था। कल - कल तीव्र निनाद करती नदी तीव्र प्रवाह से बह रही थी। ऊंचाई से गिरने के कारण उसका गर्जन दूर तक सुनाई पड़ रहा था। नदी उस पार की पहाड़ियों और वृक्षों की झाड़ियों ने कालिमा की चादर ओढ़ रखी थी। सर्वत्र भयानक सायं - सायं और जल के कलकल निनाद के अतिरिक्त कुछ न था।

आचार्य ने गम्भीर स्वर में जय महाकाली का उद्घोष किया और मेरी ओर मुखातिब होकर बोले - **छोरा, बीच धार में जाकर खड़ा हो, अभी कुछ ही पल में एक लाश बहती आएगी, उसे पकड़ कर किनारे लाना है, और जिस प्रकार बताया था उसी प्रकार समस्त कार्यक्रम सम्पन्न करना है। जा उस लाश को किनारे ला फिर मैं तुझे पूजा पर बैठा कर चला जाऊंगा. . . सारा विधान तुझे अकेले ही करना है।**

आचार्य की आज्ञानुरूप, समस्त वस्त्र उतार कर मैं नग्नावस्था में नदी में उतर गया। पहाड़ी नदी थी अतः गहराई तो अधिक न थी पर जल प्रवाह का वेग अधिक था। बीच धार में पहुंचने तक काफी प्रयास और परिश्रम करना पड़ा। ठीक दस मिनट बाद धार में कुछ बहता सा लगा। जब तक मैं कुछ सोच पाता वह मुझसे आकर टकरा गई। गुदगुदा सा स्पर्श लगा और लपक कर मैंने उसे पकड़ लिया। यह एक विशालकाय लाश थी। नदी तट पर आचार्य का गम्भीर शब्द पुनः गूंजा - **जय महाकाली।** मैं जल के प्रवाह में उसे ठेलता हुआ किनारे की ओर चल पड़ा। ताड़ वृक्ष पर बैठे दो - तीन उलूक एक साथ चीख पड़े। लाश को किनारे लाने में धारा का वेग बाधक बन रहा था पर न जाने कौन सी अज्ञात शक्ति मेरी सहायता कर रही थी। लाश को मैं किनारे पर ले आया था। आचार्य की प्रसन्नता का पारावार न था।

- जय महाकाली, छोरे आखिर तू खींच ही लाया इसे. . . अपने जीवनकाल में यह अत्यन्त दुष्ट व्यक्ति रहा है, तुझे भी तंग करेगा, पर घबराना नहीं, काली तेरी सहायता करेगी, मत घबरा, वस्त्र बदल कर बैठ, मैं चलता हूं, समस्त कार्य दिए गए निर्देशानुसार ही करना, महामाया तुझे सफल करें, मैं चला. . . और गुरुदेव खंखारते हुए उस तिमिर निशा के अंधकार में विलीन हो गए। मैं अभी तक हांफ रहा

था . . . थोड़ा विश्राम कर मैंने लाल वस्त्र धारण किए, मंत्र जप किया और पानी में उतर गया। लाश को घुटने - घुटने पानी में ले जाकर उसकी छाती पर बैठ गया। लाश जल में हिलडुल रही थी, अतः मैं ठीक से आसन नहीं जमा पा रहा था। अचानक आचार्य का क्रोधमय स्वर गूंजा, मैं चौंक गया, यद्यपि वे कहीं दूर जा चुके थे, पर उनका स्वर उनके कहीं आस पास होने का संकेत दे रहा था।

- मार साले को दो थप्पड़ . . . साला जिन्दा में भी दुष्ट था . . . अब भी वैसा ही है . . .

मैंने निर्देशानुसार उसे कसकर दो तमाचे लगाए, गहन अंधकार की नीरवता में चटाक का स्वर गूंजा।

एक विशाल चमगादड़ चीखता हुआ मेरे सर के ऊपर से गुजर गया, वृक्षों पर अभी भी उलूकों का चीत्कार जारी था। वातावरण की भयानकता प्रतिपल बढ़ती ही जा रही थी। चाँटा लगते ही लाश जल पर स्थिर हो गई। मैं उसकी छाती पर बैठकर एकाग्र हो मंत्र पाठ करने लगा तथा निर्देशित समय पर उसकी दोनों नासिका छिद्रों में अगरबत्तियां घुसेड़ दीं। वे दोनों बिना जलाए ही जल उठीं। मंत्र जप समाप्त होते ही मैं उसे किनारे की तरफ खींच लाया और एक रस्सी से समीप के वृक्ष से बांध दिया। लाश जमीन से कुछ ऊंचाई पर लटक रही थी।

मंत्र जप का कार्यक्रम चल रहा था। लाश के तलवे के नीचे थोड़ा कपूर रखकर जला दिया और उसका काजल उसके तलवों पर एकत्र होने लगा। अचानक नदी में तेज छपाक की आवाज हुई और नदी का तीव्र गर्जन सुनाई पड़ा।

अब तक सारा कपूर जलकर समाप्त हो चुका था। वृक्ष से रस्सी को मैंने खोल दिया।

धऽऽऽच्च एक जोरदार आवाज गूंजी और लाश पृथ्वी पर सीधी खड़ी हो गई। वृक्ष पर किसी पक्षी के चीखने का स्वर सुनाई पड़ा। ठीक दस मिनट बाद लाश धरती पर गिरकर धराशायी हो गई। मैंने उसके पैरों का काजल एकत्र कर एक डिब्बी में रख लिया और पुनः उसे निकाल कर उस लाश की आंखों में लगाया।

ऐसा लगा जैसे कोई चीज सरसराती हुई मेरे कान के पास से निकल गई और जरी - जड़े वस्त्रों का स्पर्श सा मुझे अनुभव हुआ। पुनः लाश की आंखों का काजल एकत्र कर लिया। अब मेरा कार्यक्रम समाप्त हो चुका था, अतः लाश को मैंने वापस जल में प्रवाहित कर दिया। मैंने कुटी की ओर प्रस्थान किया। रात काफी गहरी हो चुकी थी। दूर से देखा कुटी में आचार्य ने अग्नि प्रज्जवलित कर रखी है। कुटी में प्रवेश करते ही मैं उसके चरणों पर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठा कर गले से लगा लिया।

– जय महाकाली. . . तू सफल हो गया . . .

– सब आपके चरणों का आशीर्वाद है. . .

– यह ले. . . महाप्रसाद. . . जा वस्त्र बदल डाल . . .

– जा इसे ले जा. . . सम्भाल कर रखना . . . जब तू इसे लगा लेगा तो तू सबको देखगा पर तुझे कोई नहीं देख पाएगा . . .

. . . और अब एक बात इस काजल के प्रयोग की. . .

मैंने इलाहाबाद आकर इसका एक भाग अपने परम मित्र को दिया। एक बार उसके घर रात में डाकू घुसे। उन्होंने मेरा दिया काजल न केवल स्वयं प्रयोग किया बल्कि अपने जेवर नगदी आदि के बक्सों पर भी छिड़क दिया। आप मानें या न मानें पर यह सत्य है कि सारी रात डकैत उनके घर में एक कमरे से दूसरे में भाग दौड़ लगाए रहे, पर न तो उन्हें मित्र ही दिखाई पड़ रहा था और न ही उनका सामान। हां, मेरे मित्र महाशय अलबत्ता डाकुओं की सभी कार्यवाही देख रहे थे।

अन्जुरी भर गुलाब

सुगन्ध और रंग का मिलाप-खिलने की कला, पंखुड़ी-पंखुड़ी होकर रंगों को कह देने की बात, डाली पर बेफिक्री से मुस्कराने का ज्ञान-गुलाब बहुत कुछ कह जाता है डाली पर चुपचाप झूमते-झूमते और सुवासित कर देता है पूरे घर और आंगन को . . . जब अपने यौवन पर सम्भल नहीं पाता, तो बिखर जाता है एक-एक दल को गिराता हुआ, धरती को जाते-जाते भी रंगों से सजाता हुआ। कांटों के बीच में भी जीवन व्यतीत करने के बाद जाते हुए अपनी सुगन्ध को फिजां में घोलता हुआ।

इस प्रकृति में प्रत्येक एक गुलाब ही है, यदि उसमें श्रद्धा का गहरा लाल रंग हो— **लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।**

जिसकी आंखों में श्रद्धा का लाल रंग इतना गहरा हो गया हो कि उसे सब कुछ 'वही' दिखाई देने लग जाए। जिसमें भक्ति की सुवास हो और विषमताओं के कांटों के बीच में हल्के-हल्के झूमना आता हो। सुगन्ध का सन्देश यों ही हल्के-हल्के झूमकर ही तो बांटा जा सकता है, और यही सुगन्ध बांटने की क्रिया आज के लिए सबसे अधिक आवश्यक हो गयी है। गुलाब अपने बारे में कुछ कहना नहीं पड़ता, उसे अपनी पहिचान नहीं करानी पड़ती, गुणों की बहती सुगन्ध खुद ब खुद बोल देती है, कि यहीं-कहीं किसी कोने में कोई एक फूल गुलाब का अवश्य खिला है!

ऐसे ही फूल परमात्मा के चरणों में चढ़ाने के लिए चुने जाते हैं, जिन पर निर्मलता की एक बूंद ओस बनकर ठहर गई हो। ऐसे ही सुगन्ध से भरे पुष्प ईश्वर को तृप्ति देते हैं, ऐसे ही पुष्प गुरुदेव को सन्तुष्ट करते हैं। उन्हें ही अन्जुली में भर लिया जाता है और आकण्ठ प्रेम में भर कर एक-एक दल की तरह खिला शिष्य, जब गुरु चरणों में नमित होता है तो रुक नहीं पाता, उसका एक-एक कण बिखर जाता है, वह मात्र एक पुष्प के रूप में रह कर ही गुरु चरणों की अभ्यर्थना नहीं करना चाहता, कई-कई पंखुड़ियों में बंट कर पूजन करना चाहता है- अपने गुरु के असीम तृप्तिदायक चरणों का, उसे यह भान ही कहां रह पाता है कि वह समाप्त हो रहा है, वह बिखर रहा है या उसकी अस्मिता समाप्त हो रही है और अब से वह एक पुष्प के रूप में नहीं पहिचाना जाएगा। **यही समर्पण है, यही प्रेम की पराकाष्ठा है और यही जीवन का अनोखा रस है।** बिखरना और समाप्त होना तो बाह्य दृष्टि है, समाज का दृष्टिकोण है, शिष्य जानता है कि वह समाप्त नहीं हुआ, अब वह कई-कई रूपों में बंट गया है, जहां तक की उसकी यात्रा थी वह सम्पूर्ण हो गई है, उसके जीवन का सम्यक अंत हो गया है अन्यथा उसे एक दिन डाली पर लगे-लगे भी सूख जाना था, मुरझा कर समाप्त हो जाना था, लेकिन वह जब गुरु के पवित्र चरणों में चढ़ा तो उसके जीवन की सफलता हो गया, उत्सव हो गया, जीवन्तता हो गई। चरणों पर चढ़े ऐसे पुष्प को ही, उसकी बिखरी पंखुड़ियों को ही कोई माथे से लगा लेता है, कोई आंखों से और यही उसके जीवन की यात्रा का अर्थ है कि सूख जाने के बाद भी पहिचान नहीं जाती।

एक गृहस्थ साधक को गुरुदेव का पत्र

जोधपुर (राजस्थान),
१२-४-८१

प्रिय गिरीश,

शुभाशीर्वाद,

तुम्हारा पत्र मिला, इस पत्र के उत्तर में मुझे यही कहना है, कि मैं ट्रेनिंग इसलिए दे रहा हूं कि तुम अपने जीवन में बाधाओं और विपत्तियों से विचलित होकर अपने रास्ते से भटक न जाओ, जीवन में तो बाधाएं आयेंगी ही, यह तो एक सौभाग्य है कि हमें बार-बार इन बाधाओं, अभावों और समस्याओं के द्वारा अपने-आपको परखने का मौका मिल जाता है, इस प्रकार की स्थिति आने पर हम अपने-आपको तोल सकते हैं कि हम में कितना अधिक लचीलापन है या विपत्तियों को झेलने को कितना अधिक दम है अथवा आकस्मिक घटित विपरीत घटनाओं को झेलने की हम में कितनी अधिक क्षमता है। हार खाकर पलायन होने की अपेक्षा मुस्कराकर खड़े होना सीखो, विपत्तियों से घबराकर विचलित होने की अपेक्षा अपने-आपको जीवन्त और सजग बनाए रखने का अभ्यास करो, यही तुम्हारी कसौटी है, यही तुम्हारी कर्मशाला का पहला अभ्यास है।

जीवन में हार का मतलब हार नहीं होता, हार के पीछे ही जीत छिपी होती है। अन्धकार के बाद प्रकाश आता है, ठीक उसी प्रकार हार के बाद भी जीत का स्वर्णिम प्रभात उदय होता है, **वीर हारते हैं, कायर नहीं। पैदा होते ही कौन विजयी हुआ है,** जीवन में जितने भी उच्चकोटि के साधक और सन्यासी, योगी और यति, राजा और शासक हुए हैं सभी अपने जीवन में हारे हैं, सभी ने पराजय का जहर पिया हैं, अभावों का दुख झेला है, परन्तु इतना होने के बावजूद भी वे विचलित नहीं हुए, इसीलिए तो मैं कहता हूं, कि हारना वीरता का चिह है, जो बहादुर होते हैं, जिनमें संघर्ष करने की क्षमता होती है, जो संघर्षमय क्षणों में जीवित रहने की अदम्य लालसा लिए होते हैं, वे ही हारते हैं, और हारने के बाद भी निस्तेज नहीं हो जाते, अपितु उस हार को, उस पराजय को, एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं, उसके सामने खम ठोंक कर खड़े हो जाते हैं, उसे चुनौती देते हैं, और उस हार को विजय में परिवर्तित कर देते हैं।

तुमने अपने परिवार की बात लिखी और लिखा कि परिवार तुम्हारी साधना में बाधक है, परन्तु **मेरा यह कहना है कि परिवार कभी भी बाधक नहीं होता,** आवश्यकता इस बात की है कि तुम्हें इस परिवार में ही अनासक्त रूप से रहने का अभ्यास करना है, **तुम परिवार में रहते हुए भी नहीं हो-** ऐसी भावना अपने-आप में लानी है, परन्तु ऊपर से तुम्हें किसी प्रकार की उपेक्षा का बर्ताव परिवार के प्रति नहीं करना है।

अपने-आपको परिवार का एक अंग मानते हुए भी अपने अस्तित्व को अलग - थलग बनाए रखो। तुम्हें इस बात का ध्यान रखना है कि परिवार से पलायन करना कायरता है परिवार में रहकर साधना करते हुए अपने-आपको साधना के योग्य बनाना और साधना में सफलता प्राप्त करना ही जीवन की पूर्णता है। तुम्हें परिवार में कमलपत्रवत् बने रहना है, जिस प्रकार पानी में कमल रहते हुए भी उसके ऊपर पानी का कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार तुम्हें भी परिवार के अंग के रूप में रहते हुए भी उस माया, मोह में अपने-आपको लिप्त नहीं करना है, परिवार के कार्यों में बराबर भाग लेना है, पत्नी को पति की तरफ से जो सहयोग मिलता है, वह तुम्हें देना है, परिवार के मुखिया के रूप में घर का पालन-पोषण करना है, परन्तु इसके बाद भी अपने अस्तित्व को अनासक्त भाव से बनाए रखकर साधना में पूर्णता प्राप्त करनी है। **यह कार्य जल्दी करना है, क्योंकि जीवन बहुत थोड़ा रह गया है, और जीवन का प्रत्येक क्षण चाहे-अनचाहे बीतता जा रहा है।** तुम्हें जीवन के प्रत्येक

गुरु - वचन शाश्वत् होते हैं और वे काल की सीमाओं में बद्ध किसी समय विशेष के लिए ही व्यक्त नहीं होते। आज से १३ वर्ष पूर्व एक साधक को लिखा गया पूज्यपाद गुरुदेव का यह पत्र प्रकाश स्तम्भ के समान है, जिसमें इस क्षण के लिए भी संदेश है और आने वाले युग के साधकों के लिए भी . . .

क्षण का हिसाब रखना है, एक क्षण भी व्यर्थ न जाए। समय तुम्हारे साथ है, परिस्थितियों को तुम्हें अपने अनुकूल बनाना है और पूर्ण क्षमता, दिलेरी, जोश और उमंग के साथ जीवन को पूर्णता देनी है।

मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम पारिवारिक और सामाजिक आलोचनाओं से घबरा गए हो। ऐसा लग रहा है कि तुम मानसिक रूप से कुन्द होते जा रहे हो। तुम्हारे पत्र से मैं अनुभव कर रहा हूं कि तुम्हारी मानसिकता पर ये समस्याएं हावी होती जा रही हैं, पर तुम्हें यह याद रखना है, कि कायरों का साथ ईश्वर भी नहीं देता, निन्दा के भय से अपने काम को छोड़ देना कायरता और कृतघ्नता है। इस अन्धविश्वास से, इस पलायनवादी प्रवृत्ति से अपने-आपको ऊपर उठाओ, सारी मानसिक वृत्तियों को समेट कर मजबूत बनो, और मन में यह विश्वास पैदा करो कि मैं जो चाहूं कर सकता हूं। **मैं प्रारब्ध को भी हरा सकता हूं, मैं साधना सम्पन्न कर जीवन को पूर्णता दे सकता हूं। हम पुरुषार्थी हैं, पुरुषार्थ के द्वारा ही हमें अपने रास्ते का निर्माण करना है,** और इन आलोचनाओं, विपत्तियों तथा समस्याओं के बीच ही निर्विकार भाव से आगे बढ़ते रहना है। जब मैं समझूंगा, कि तुममें पूर्ण साधक बनने की क्षमता आ गई है, तब अपने पास बुला लूंगा और तुम्हें जीवन की उच्च साधनाओं की ओर उन्मुख कर दूंगा।

इस मलमूत्र भरी जिन्दगी में कोई सार नहीं है, सोना, खाना, पीना और सन्तान उत्पन्न करना तो पशुओं का कार्य है। तुम्हें जल्दी ही अपने पशुत्व से ऊपर उठकर देवत्व की ओर अग्रसर होना है। जब तुम अपने जीवन को समर्पित भाव से गुरु के आगे रखकर साधना के द्वारा जीवन की पूर्णता प्राप्त कर लोगे, तब तुम्हें असली आनन्द का अनुभव हो सकेगा, एक ऐसी शांति महसूस कर सकोगे, जो अनिर्वचनीय है, एक ऐसे ध्यान में लीन हो सकोगे, जिसके आगे प्रकाश ही प्रकाश है, इस प्रकार का रास्ता सौभाग्यशाली ही प्राप्त कर सकते हैं। कमाना, धन संचय करना, चुपड़ी हुई रोटी खा लेना तो कायरों का भी काम हो सकता है, परन्तु तुम्हारा जीवन इन छोटी-छोटी साधनाओं के लिए नहीं है, तुम्हें अपनी योग्यता से, अपनी श्रद्धा और विश्वास से इन सारे प्रपंचों से ऊपर उठना है, **समय तो निकालने पर निकलता है,** तुम्हें समय निकाल कर, गुरु चरणों में बैठकर, कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास कर सहस्रार जाग्रत करना है, जिससे कि तुम दिव्य बन सको, अप्रतिम बन सको।

मैं तुम्हारे साथ हूं और मेरी सामीप्यता तुम प्रत्येक क्षण अनुभव करोगे। मैं देख रहा हूं, कि तुम्हारे जीवन के और तुम्हारी साधनाओं के मार्ग में आगे काले बादल छंट रहे हैं और भोर का स्वर्णिम प्रभात विजय-माला लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

तुमने 'ऊर्ध्वचेता' साधना सम्पन्न कर ली, यह मैं देख चुका हूं, **तुम्हें अब आगे बढ़ना है** . . . आगे बढ़ते ही रहना है . . .।

स्नेहसिक्त

नारायणदत्त श्रीमाली

प्रलयंकर

जिसका आविर्भाव भगवान शिव की जटा से हुआ

भगवान शिव की कथा- जब उनके श्वसुर दक्ष प्रजापति ने उनको जानबूझ कर यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया, किसको ज्ञात नहीं, किन्तु वह कथा अपूर्ण है क्योंकि उसमें भगवान शिव के ही अंश से ही उत्पन्न अनेक प्रमुख वीरों की उत्पत्ति का वर्णन पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं होता। **प्रयलंकर ऐसा ही ''वीर योनि'' का प्रमुख गण था, क्रोध का अवतार। जिसका भगवान शिव के अंश से उन्हीं की एक तपः रश्मि से हुआ था, लोक कथाओं के अनुसार उनकी जटा के एक भाग से . . .**

. . . इसी का भय था देवगण और ऋषियों को और वे दक्ष प्रजापति से याचना कर करके थक चुके थे कि अब वे और आहुतियां न दे, शक्तियों का आह्वान न करें क्योंकि जो उनके समक्ष खड़े हैं, जिनसे उनका विरोध ठन गया है, वे साक्षात् देवाधिदेव भूतपति त्रैलोक्येश्वर भगवान शिव हैं और उनका आमंत्रण न कर उनके प्रति सम्मान व्यक्त न कर उनको आहुतियां न प्रदान कर वे पहले ही उनका घोर अपमान कर चुके हैं, फिर भी उन्होंने केवल चेतावनी ही तो दी। अब उनसे और विरोध करना साक्षात अपने विध्वंस को आमंत्रण देना है।

किन्तु दक्ष प्रजापति अपने मद में सभी मर्यादाएं भुला वैठे थे। न तो उन्हें याद रहा कि जो उनके समक्ष खड़े हैं वे पदवी व स्वरूप में कौन हैं और न यह कि वे सम्बन्धों में उनके क्या लगते हैं। यज्ञकर्त्ता उनकी आज्ञा से बद्ध थे और निरन्तर आहुतियां देते हुए शक्तियों का आह्वान कर रहे थे, उग्र और विध्वंसकारी किन्तु. . .

. . . हवन कुण्ड के बगल में ही एक और दहकता हवन कुण्ड उपस्थित हो गया था। जीवित और कहीं ज्यादा लपटों से भरा हुआ। क्रूर आकृति, विशालकाय, सारे यज्ञ मण्डप में फैली विध्वंस की कालिख मिलकर ही जैसे उसके शरीर के रंग में उतर गई थी। हवन कुण्ड के सामने जो कुछ शेष रह गया था उसे निगल जाने के लिए प्रयलंकर के विशाल बाहु बढ़ चले। उसकी आकृति के आगे तो यज्ञ मण्डप खिलौनों का ढेर लग रहा था और यज्ञ मण्डपों के साथ - साथ राज भवन के स्तम्भों, गुम्बदों को अपनी बाहों में समेटता हुआ प्रलयंकर प्रलय का ही मूर्त रूप दिखाई पड़ रहा था। शरीर से उपजती क्रोध की लपटें सारे वातावरण को जलाकर राख कर दे रही थीं। सामान्य जन की कौन कहे देव गण भी सहम कर भगवान शिव के मुख को देखने लग गए थे।

अन्य सभी गणों के पराजित हो जाने की स्थिति में अत्यन्त उग्र होकर भगवान शिव ने अपनी विशाल जटा में से केवल एक अंश धरा पर पटका था और उस उत्पत्ति में उनका पूरा तेज और

भगवान शिव के गणों में सर्वाधिक उग्र, साक्षात् क्रोध और विनाश का अवतार. . . जिसके आविर्भाव से ही दक्ष का यज्ञ पूर्ण रूप से विध्वंस को प्राप्त हुआ

क्रोध आकर समा गया था . . . अपनी अर्धांगिनी के वियोग का शोक, अपमान का क्षोभ और उससे भी अधिक निरन्तर दक्ष द्वारा अमर्यादा के कारण ही भगवान शिव ने ऐसे कदम उठाने के लिए, स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए प्रलयंकर का निर्माण किया, **जो कालांतर में उसका सबसे प्रिय गण बना। देवताओं की अत्यन्त अनुयय- विनय के बाद ही स्थिति शांत रूप ले सकी।**

क्रोध का ताण्डव इस प्रकार मूर्त रूप लेकर भी उपस्थित हो सकता है इसकी कल्पना देवताओं को भी नहीं थी। उन्होंने भगवान शिव के क्रोध को देखा था उसे कई- कई बार परखा और समझा भी लेकिन उनके कण्ठ में समुद्र मन्थन के समय समाया विष यदि छलक जाए तो उसके छींटें भी कितने घातक हो सकते हैं, इसकी कल्पना भी उन्हें नहीं थी **और प्रलयं कर . . . वह उसी विष का एक छींटा ही लग रहा था,** जिस पर पल भर के लिए भी दृष्टि टिक नहीं पा रही थी। क्रोध, उत्तेजना और तेजस्विता के उस साकार पुंज के सामने सभी की वाणी स्तम्भित हो गयी थी। देवता अपनी शक्तियां भूल गए थे और होतागण अपने - अपने मंत्र। प्रलयंकर की हुंकार ही सारे वातावरण में व्याप्त होकर उसके शांत हो जाने के बाद भी वातावरण को सहमा कर छोड़ गयी थी।

क्रोध भी जीवन का सौन्दर्य होता है। पुरुष के जीवन का आवश्यक अंग होता है और यथार्थ में बिना क्रोध के कोई निर्माण सम्भव भी नहीं। क्रोध से ही व्यक्ति के अन्दर पौरुष की चमक आती है। क्रोधवान ही फिर क्षमावान भी हो सकता है। वही तेजस्वी और हृदयवान भी होता है। जो भक् से एक पल में जलने की और विध्वंस करने की क्षमता रखता है वही अगले क्षण असीम प्रेम व क्षमा में भी डूब सकता है।

यह तो एक ढोंग है कि जीवन में क्रोध नहीं होना चाहिए। जीवन में क्रोध अवश्य होना चाहिए, किन्तु उसका प्रयोग करते समय विवेक का नियन्त्रण भी होना चाहिए और जीवन का ऐसा सन्तुलन साध लेना ही वास्तविक साधना है।

प्रलयंकर की कथा जिस प्रकार एक वास्तविक घटना है उसी प्रकार जीवन की एक अति महत्वपूर्ण स्थिति की ओर संकेत करने का प्रतीक भी। भगवान शिव जब अपमान की ज्वाला में दग्ध हुए तब भी वे आशुतोष और शिव ही थे किन्तु वह अवसर एक बहाना बन गया, जब उन्होंने अपने क्रोध को साकार रूप दिया, जिससे साधक के जीवन में क्रोध की आराधना करने के लिए एक साकार स्वरूप हो। **'क्रोध की आराधना' शब्द से चौंकने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि देवी की स्तुति भी ''क्रोध रूपिण्यै'' कहकर की गई है।** भगवान शिव देवाधिदेव के रूप में जीवन की सम्पूर्णता को प्रदर्शित करते हैं जिनमें प्रेम भी है, क्रोध भी है जिनमें करुणा, विध्वंस, वैराग्य, ऐश्वर्य , श्रृंगार प्रियता, श्मशान वास, गृहस्थ और वीतरात योगी सभी के दर्शन होते हैं।

<u>प्रलयंकर की साधना यथार्थ में एक ऐसी तेजस्विता की साधना है जिसे प्रत्येक साधक को करना कभी न कभी अनिवार्य प्रतीत होगा ही</u>। विशेष रूप से जो साधक तंत्र के क्षेत्र में जाना चाहते हैं तीव्रता से बढ़ना चाहते हैं, समाजोपयोगी और प्रखर बनना चाहते हैं, उन्हें भगवान शिव के अंश की इस साधना को अपने जीवन में स्थान देना ही पड़ेगा अर्थात् शिवत्व से युक्त क्रोध युक्त बनना ही पड़ेगा। जिस प्रकार एक पवित्र स्थान के चारों ओर कांटों की बाढ़ लगाई जाती है कि उसे कोई अपवित्र न कर दे उसी प्रकार अपने जीवन के श्रेष्ठ चिन्तन को, अपने पारिवारिक जीवन को सुरक्षित रखने के लिए इस प्रकार की साधना और क्रोध की बाढ़ अवश्य लगानी चाहिए जिससे पशु रूपी व्यक्ति उसे अपवित्र न कर सकें।

यह साधना मूल रूप में भगवान शिव की ही साधना है क्योंकि प्रलंयकर का निर्माण उन्हीं की एक किरण से हुआ है अन्तर केवल इतना है कि जहां भगवान शिव की साधना सौम्य रूप में की जाती है वहीं इस साधना को उग्र रूप से तामसिक ढंग से सम्पन्न किया जाता है। तामसिक केवल भावनाओं की दृष्टि से आचरण की दृष्टि से नहीं । इस पूरी साधना में क्रोध मुद्रा और मन में तीक्ष्णता का होना आवश्यक है। किसी भी कृष्ण पक्ष के रविवार की रात्रि में ११ बजे के उपरान्त काले वस्त्र पहन कर ऊनी आसन पर बैठें। तेल का अखण्ड दीपक लगा लें, और **तांत्रोक्त शिव यंत्र** का संक्षिप्त पूजन करें। शिव यन्त्र के सामने एक **महाप्रभ** स्थापित करें जो प्रलंयकर की शक्तियों का तांत्रोक्त रूप है। इसका पूजन **ईख के रस** एवं लाल फूलों से कर **रुद्राक्ष माला** से निम्न मंत्र की एक माला मन्त्र जप करना पर्याप्त होता है। नैवेद्य में गुड़ की बनी वस्तु चढ़ाएं।

मंत्र -

भं भैरव स्वरूपाय प्रचण्ड क्रोधिन्यै नमः ।।

प्रलयंकर का स्वरूप अत्यन्त भयास्पद होता है अतः प्रथम बार में इसके स्पष्ट दर्शन नहीं प्राप्त होते। जब साधक धीमे - धीमे साधना करते हुए प्रलयंकर की धूमिल छवि देखते क्रमशः भयमुक्त होने लगता है तभी प्रलयंकर अपना सम्पूर्ण रूप प्रकट करते हैं अतः साधक को अपने मन में कोई शंका नहीं लानी चाहिए। प्रथम दिवस से ही साधक को अपने आस - पास एक ऐसी अनुभूति होने लगती है जिससे वह कहीं भी बिना भय के आ जा सकता है तथा आत्मविश्वास से भरा रहने लगता है।

जो साधक मानसिक दौबर्ल्य से पीड़ित हो या जिन्हें शत्रुभय अथवा अकारण भय बना रहता हो उन्हें यह साधना सहयोगी सिद्ध होती है किन्तु साधना करने से पूर्व पूज्य गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त कर उनके अनुमति से ही साधना सम्पन्न करनी चाहिए।

राजनीतिक भविष्य एवं शेयर मार्केट

यह माह राष्ट्र के लिए अत्यधिक तनावपूर्ण व वैमनस्य से भरा सिद्ध होगा। पिछले कई महीनों से दबी - छुपी साम्प्रदायिक घृणा व हिंसा का ज्वार फूटेगा और भीषण रक्तपात होने की सम्भावना है। जिस प्रकार वर्ष १९९२ दिसम्बर में सम्पूर्ण देश साम्प्रदायिक हिंसा की चपेट में आ गया था, उसकी पुनरावृत्ति होगी और मध्यावधि चुनाव की घोषणा निश्चित रूप से करनी पड़ेगी। देश के सर्वांगीण विकास को गहरा आघात पहुंचेगा। उत्तर प्रदेश में यद्यपि जातीय संघर्षों की भरमार रहेगी किन्तु साम्प्रदायिक हिंसा व तनाव पर शासन का पूर्ण नियन्त्रण बना रहेगा।

इस नवीन घटनाक्रम के कारण देश के अन्य विवाद गौण पड़ जाएंगे। जीवन व सम्पत्ति की अत्यधिक हानि होगी। बम्बई का क्षेत्र यद्यपि साम्प्रदायिक हिंसा की चपेट में बहुत अधिक नहीं आएगा तथा मराठावाड़ा विश्वविद्यालय को लेकर आरम्भ हुए जातीय संघर्ष भी समाप्त हो जाएंगे, किन्तु **आगामी कुछ समय के लिए बम्बई का औद्योगिक जगत निस्तेज पड़ जाएगा।** गोदी कर्मचारियों की लम्बी हड़ताल के कारण व्यापार को और भी अधिक आघात पहुंचेगा। मध्य प्रदेश की राजनीति में प्रबल उतार - चढ़ाव आएंगे। कुछ पुरानी व्यापारिक लॉबियां सत्तापक्ष के असन्तुष्टों से मिलकर श्री दिग्विजय सिंह के लिए संकट उत्पन्न कर देंगी। इस प्रकार बिहार की प्रमुख खनन नगरी में हिंसा की घटनाओं, माफिया ग्रुपों के टकराव व उनकी राजनीतिक सांठ गांठ से श्री यादव की सरकार समाचार पत्रों में आलोचना का मुख्य विषय रहेगी, यद्यपि श्री यादव अपने दल के विधायकों का समर्थन एक मत से प्राप्त होने के कारण सत्ता में बने रहेंगे। पश्चिम बंगाल में अराजकता, छिटपुट प्रदर्शन व उपद्रवों की भरमार रहेगी।

इंग्लैण्ड में जॉन मेजर की सरकार पुनः विवादों में फंसेगी और वहां का राजपरिवार भी गम्भीर संवैधानिक संकट का सामना करेगा। इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रेलिया में अनुदारवादियों का वर्चस्व शासन में बढ़ेगा। **अमेरिकी शासन बिल क्लिंटन के विवादों में फंसे रहने के कारण भारत विरोधी टिप्पणियां एवं अपने बड़बोलेपन को सीमित करेगा।** मध्य एशिया में इज़राइल एवं फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चे के मध्य वार्ताओं का आरम्भ होगा तथा कुछ सकारात्मक व विशेष परिणाम सामने आएंगे। मुस्लिम देशों में एक जुटता बढ़ेगी। दक्षिण अफ्रीका पुनः गम्भीर एवं हिंसात्मक गतिविधियों की चपेट में फंसेगा।

शेयर मार्केट

अराजकता, यातायात के अवरुद्ध रहने एवं लगातार बाजार बन्द रहने से शेयर मार्केट में जो उथल - पुथल होगी, उससे तो शेयर मार्केट के पुराने दिग्गज भी आश्चर्य में पड़ जाएंगे। बम्बई एवं समीपवर्ती क्षेत्रों में वर्तमान समय में किसी नए औद्योगिक कार्य की नींव डालना हानिप्रद सिद्ध होगा।

इन सभी परिस्थितियों के बाद भी **इस माह के लाभदायक शेयर** रहेंगे - डी.सी.एम. श्री राम कॉन्सालिडेटेड, बिन्दल एग्रो केमीकल, नेस्ले इंडिया लिमिटेड, मोदी रबर, ओसवाल एग्रो, गुजरात अम्बुजा एक्सपोर्ट, कजरिया सिरेमिक्स, कृष्णा इंजीनियरिंग। मॉडर्न ग्रुप के सभी शेयर भी बेहद अच्छी स्थिति में रहेंगे।

दूसरे दर्जे के शेयर में अपोलो टायर्स, जे.सी.टी. लिमिटेड, सीएट, श्री राम इन्डस्ट्रियल इन्टरप्राइजेस, धामपुर शुगर, रैन बैक्सी इन्डस्ट्रीज, नागार्जुना फर्टीलाइजर्स का नाम लिया जा सकता है। रिलायन्स इन्डस्ट्रीज के लिए यह माह विशेष कठिनाई का है।

लार्सन एण्ड टुब्रो, केल्विनेटर, जिंदल ग्रुप के सभी शेयर, अन्सल्स ग्रुप के शेयर एवं तथा हिन्दुस्तान डेवलपमेंट कारपोरेशन - ऐसे शेयर है जो वर्तमान में यद्यपि विशेष लाभ देने में समर्थ नहीं है, किन्तु इनमें बिना किसी आशंका के धन नियोजित किया जा सकता है।

नए इश्यु में मुर्गन स्टेनले, नाहर शुगर, मूलचंद एक्सपोर्ट, आइ. एफ. सी. आई. का भविष्य सुरक्षित है जबकि अन्य नए इश्यु के बारे में यही बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती।

हिन्दुस्तान लीवर, एस्सार गुजरात, आई.टी.सी., बल्लारपुर, बिड़ला जूट, ब्रिटानिया, जय प्रकाश इंडस्ट्रीज, जे. के. सिंथेटिक, एस्कोर्टस, लिप्टन ब्रुक बांड, इंडियन रेयन, बाटा, भारत कामर्स — ये इस माह के कुछ ऐसे शेयर है **जिन में अप्रत्याशित रूप से उतार आएगा** और इनमें से कई प्रतिष्ठित नाम तो ऐसे हैं जिन्हें भविष्य की दृष्टि से भी सुरक्षित नहीं कहा जा सकता।

हिन्डालको, हिन्द मोटर, शॉ वैलेस, टिस्को, जुआरी एग्रो तथा इंडोगल्फ फर्टीलाइजर वर्तमान माह में तो नहीं किन्तु पूंजी निवेश की दृष्टि से आगामी दिनों में उचित शेयर है।

ज्योतिष तो जीवन का वरदान है

भारतीय विद्याओं में से प्रत्येक विद्या व्यवहारिकता और आध्यात्मिकता का सुखद संयोग है ज्योतिष विद्या का गहन अध्ययन करने पर यही बात पूर्ण रूप से पुनः स्पष्ट होती है। गूढ़ विद्या का सम्पूर्णता व सरलता के साथ समझाने का प्रयास करता शोध परख लेख।

ज्योतिष का अर्थ मानव केवल भविष्य कथन तक ही सीमित रखता है या फिर नौ ग्रहों का संयोग मात्र मानता है। ज्योतिष, फल कथन की विद्या आज बनी है। ज्योतिष अपने मूल स्वरूप में फल - कथन की विद्या मात्र ही नहीं रही।

ज्योतिष का सीधा सा अर्थ है कि इस अनन्त ब्रह्माण्ड में जो कुछ बिखरा हुआ है, वह कैसे मनुष्य के तादात्म्य में आता है? क्या मनुष्य का विराट प्रकृति से कोई सम्वन्ध है भी अथवा नहीं? क्या मनुष्य अपने स्वरूप में एकाकी है अथवा सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्माण्ड से तादात्म्य रखता है? क्या उसकी नियति एक शून्य से आते हुए शून्य में विलीन हो जाने मात्र की ही है अथवा इस भयावह एकाकीपन में उसका कहीं से कोई तादात्म्य भी है? अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो क्या उसका एक क्षुद्रता से उठकर उस विराटता से भी कोई सम्पर्क है, जिसे ईश्वर अथवा भारतीय चिन्तन के अनुसार 'ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है?

आर्य सभ्यता ने जव अपनी चेतना की आंखें खोलीं, जीवन देखा, युद्ध देखे, प्राकृतिक आपदाएं देखीं और मृत्यु देखी, तब उसने जहां एक ओर भय से भर कर स्तुतियां कीं, वहीं गम्भीर होकर व्यष्टि और समष्टि का सम्बन्ध भी जानना चाहा। दिन में उगता हुआ सूर्य और रात में नीली चादर पर झिलमिलाते तारे, चन्द्रमा का घटता - बढ़ता स्वरूप, सितारों के परस्पर मिलन से बनने वाली आकृतियां - ये सब उसको सुन्दर भी लगे और गूढ़ रहस्य छिपाए हुए भी, जो उसके ऋचाओं के अंग बने और उसकी जिज्ञासा के भी।

ज्योतिष अपने - आप में अत्यन्त गम्भीर और जटिल शास्त्र है। फल - कथन तो उसका एक अंग मात्र है- उसका एक अत्यन्त लघु अंग। ज्योतिष शास्त्र, एक मानव के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सभी कुछ तो नाप लेने की क्रिया है, उसका भावितव्य, उसकी नियति और वह जीवन में किन आयामों को स्पर्श कर सकता है — इसका गहन लेखा - जोखा। <u>**ज्योतिष** की सही संज्ञा, **ज्योतिर्विज्ञान** थी, और भारतीय चिन्तन में ब्रह्म को ज्योति स्वरूप ही माना गया है।</u>

यह केवल नौ ग्रहों का और २७ नक्षत्रों का विज्ञान ही नहीं है और इस अनन्त ब्रह्माण्ड में केवल नौ ग्रह ही क्यों नियामक माने गए क्यों २७ नक्षत्रों पर ही गणनाएं आधारित की गईं? इस बात का ज्ञान और चिन्तन क्रमशः लुप्त होता गया। ज्योतिष, शास्त्र मात्र नहीं है, ज्योतिष एक दर्शन है, जिस प्रकार से अन्यान्य दर्शन हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहां अन्य दर्शन गम्भीर तथ्यों की विवेचना करते हैं, वहीं यह विज्ञान उस विराट पुरुष से मनुष्य का सम्बन्ध जोड़ते हुए आध्यात्मिकता की परम स्थिति तक ले जाने में सहायक बनता है। उस परम शुद्ध की यात्रा तक में क्या - क्या पड़ाव आएंगे, कौन - कौन सी कठिनाइयां आयेंगी, क्या कुछ घटित होगा, इसकी भी क्रमशः विवेचना करता चलता है, जिससे यह मार्ग सुगम और निरापद हो सके।

कालान्तर में अन्य विद्याओं के ह्रास के समान ही ज्योतिष में भी ह्रास आ गया और अधकचरे व्यक्तित्व इसको लेकर फुटपाथों पर बैठ गए। केवल इतना ही नहीं, ज्योतिष से सम्बन्धित अन्य सहायक रमल विद्याएं विकसित होती हुई, बहुत ही निम्न रूप में सड़कों पर उतर कर अपनी विश्वसनीयता खो गईं। ज्योतिष मूल रूप में वेद का अंश है और इसके अध्ययन के लिए जो पवित्रता चाहिए, जिस प्रकार से गहन आध्यात्मिकता चाहिए, उसका सर्वथा अभाव हो गया, उसके स्थान पर व्यवसायिकता आ गई। फल कथन को केवल ग्रहों के जोड़- घटाने तक ही सीमित कर दिया गया। ग्रहों के जोड़, घटाव से और उनकी चाल से ही ज्योतिष को नहीं समझा जा सकता। उनके सम्बन्ध से फल - कथन

नहीं किए जा सकते, **क्योंकि ज्योतिष केवल गणित नहीं है। ज्योतिष में प्रज्ञा का भी पर्याप्त महत्व रहता है।** जहां जटिल ग्रह स्थिति होती है वहां ज्योतिषीय गणना से भी अधिक प्रज्ञा द्वारा स्थिति का ज्ञान होता है। गणित एवं ग्रह तो सूचक होते हैं, जिनके द्वारा दिशा निर्धारित होती है, संकेत मिलता है कि व्यक्ति का प्रारब्ध किस ओर अग्रसर है, किन्तु जब ज्योतिष का साधना - पक्ष उपेक्षित हुआ व प्रज्ञा- चेतना का महत्व घटा, व्यक्ति की गहनता और आध्यात्मिकता में न्यूनता आई, उसके चिन्तनों में हल्कापन आया तभी से ज्योतिष का यह पक्ष न्यून हो गया और इसका स्थान भरने के लिए तथाकथित ज्योतिषियों ने गणित पक्ष को अधिक उभार कर सारी विद्वता का आधार उसे ही बना दिया।

इस विसंगति की ओर युगों तक किसी ज्योतिर्विद् ने ध्यान नहीं दिया और सभी परिपाटी का पालन मात्र ही करते रहे। जटिलताएं बढ़ती रहीं और एक सहज अध्यात्मिक ज्ञान आम व्यक्ति की पहुंच से बहुत दूर हो गया। व्यक्ति यह भूल गया कि ज्योतिष उसके जीवन का ही एक अंग था। उसका ज्योतिष से जो अलगाव हो गया था वह एक सोची - समझी योजना थी, लेकिन व्यक्ति ने इस चाल को नहीं समझा और ज्योतिषियों के पूजन होते रहे। **सर्वप्रथम पूज्यपाद गुरुदेव ने इस विसंगति को समझा।** उन्होंने न केवल इस विज्ञान को पुनः उसी स्थिति तक पहुंचाया जहां पर यह कभी पूर्व में अवस्थित था, वरन इसके आध्यात्मिक पक्ष को भी सहजता से प्रस्तुत किया। यह एक चुनौती भरा कार्य था क्योंकि रूढ़िवादी ज्योतिषियों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस देश में गतिशील है ही, जो ग्रहों की चाल, अंश की चर्चा, दुरुह पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर ज्योतिष को एक विशिष्ट ज्ञान बनाए रखे है और सामान्य व्यक्ति को उसकी परिधि में भी प्रवेश नहीं करने देता। इसी विसंगति को दूर करने के लिए पूज्यपाद गुरुदेव ने भारतीय ज्योतिष के प्रारम्भिक पक्ष से लेकर अन्तिम पक्ष तक, सामान्य ज्ञान से लेकर जटिल शास्त्रीय ज्ञान तक सभी कुछ संग्रहित करते हुए, उसे छोटी- छोटी पुस्तकों के आकार में प्रकाशित करना आरम्भ किया और सामान्य जनता ने उसको पढ़कर जाना कि ज्योतिष यद्यपि

ज्योतिष विद्या अर्थात् ज्योतिर्शास्त्र, ज्योति का विज्ञान - इसी तथ्य को प्रतिपादित किया है पूज्य गुरुदेव ने अपने ज्योतिष विद्या के अध्ययन में

कठिन विद्या है, किन्तु ऐसा नहीं कि वह उसमें प्रवेश न पा सके।

यह ज्योतिषियों के एकाधिकार पर करारी चोट थी, जिससे वे तिलमिला गए। उन्होंने आक्षेप किए, कुचक्र रचे, किन्तु अन्त में उन्हें भी बाध्य होकर ज्योतिषीय ज्ञान को सरल बनाकर प्रस्तुत करना ही पड़ा। **भारतीय ज्योतिष अनुसंधान केन्द्र (जोधपुर)** के माध्यम से पूज्यपाद गुरुदेव ने ज्योतिष को व्यापकता और गरिमा दोनों दीं। अनेक योग्य शिष्यों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ाया और **भारतीय ज्योतिष सम्मेलन के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद को निरन्तर कई वर्षों तक सुशोभित किया।** विदेशों में भी सेमिनार आदि के अवसर पर निरन्तर यात्राएं कीं और एक प्रकार से **सम्पूर्ण भारत में डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली एवं ज्योतिष एक दूसरे के पर्याय बन चुके हैं।**

वर्तमान में अत्यधिक व्यस्तता के कारण पूज्यपाद गुरुदेव ने इस क्षेत्र में अपनी गतिविधि सीमित कर दी है, तथा उनका यह मानना है कि मुझे जब तक सुपात्र नहीं मिलता तब तक मैं उसका आगामी ज्ञान प्रस्तुत नहीं करूंगा। **इस देश की यह विडम्बना है कि यहां जो कुछ भी सहज होता है, सहज प्राप्त होता है उसको सस्ता बना दिया जाता है।** पूज्यपाद गुरुदेव ने ज्योतिष को सहजता दी, सरसता दी लेकिन आज ज्योतिष के नाम पर जिस प्रकार से अधकचरे ज्योतिषी बढ़ गए हैं, वह उनके लिए चिन्ता करने का कारण बना। अत्यन्त व्यथित हृदय से पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि क्या इस देश की इतनी बड़ी आबादी में दो - चार व्यक्ति भी ऐसे नहीं हैं जो केवल ज्योतिष सीखने के लिए ही समर्पित हो जाएं और मैं उन्हें इस विराट विज्ञान के सभी पक्षों से परिचित करवाता हुआ, उस स्तर पर ले जाऊं जहां वे इस क्षेत्र में प्रकाण्ड विद्वान बन सकें, सिद्धहस्त की उपाधि प्राप्त कर सकें?

ज्योतिष का शास्त्रीय ज्ञान अत्यन्त कठिन और दुरुह है और व्यक्ति जब कुछ विशिष्ट साधनाएं करता हुआ इस मार्ग पर गतिशील होता है तभी उसे समझ में आता है कि भारतीय दर्शन का सिद्धान्त **'यत् पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे',** वास्तव में केवल ज्योतिष के माध्यम से ही समझा जा सकता है और तब यह ग्रह - नक्षत्रों का विज्ञान होते हुए भी, उसकी सीमाओं से परे विस्तारित हो जाता है। तब यह खगोल विज्ञान भी बन जाता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने अलौकिक सौन्दर्य के साथ,

उसके दृष्टिफलक के सामने नाच उठता है। व्यक्ति इसके माध्यम से भी जीवन के उस सत्य को प्राप्त कर सकता है, साधना की उन स्थितियों को प्राप्त कर सकता है, जिसके लिए उसे योग, मंत्र अथवा तंत्र का आश्रय लेना पड़ता है, प्रकाण्ड ज्योतिषी और भविष्यवक्ता तो वह बन ही जाता है। सही कहा जाए तो ज्योतिष इन्हीं अर्थों में परिभाषित किया जाना, आज की आवश्यकता है, किन्तु इसके लिए एक सुविस्तृत क्रम अपनाना होगा और तब व्यक्ति समझ सकेगा कि यह विज्ञान भी कितना अधिक तृप्तिदायक और आनन्द युक्त है। जब वह एक स्थान पर बैठे - बैठे ही सम्पूर्ण ग्रहों और लोक नक्षत्रों में विचरण कर सकेगा, अपने सूक्ष्म प्राणों से वहां तक की यात्रा कर सकेगा एवं इस ब्रह्माण्ड में फैले हुए ईथर के माध्यम से अपने को सभी लोकों में विस्तारित कर सकेगा, तभी तो वह समझ सकेगा कि यह कितना अधिक विराट विज्ञान है।

ऐसे ही विराट विज्ञान की सम्भवतः अन्तिम कड़ी **पूज्यपाद गुरुदेव डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली जी** में यह दुलर्भ ज्ञान उनके तप के बल, साधना की गरिमा और गुरु - परम्परा के द्वारा सुरक्षित है। ज्योतिर्विद ही उनकी एक मात्र संज्ञा नहीं है, वह एक जाज्वल्यमान ज्योतिर्पिण्ड के रूप में ही इस धरा पर विद्यमान हैं। पूज्यपाद गुरुदेव ने ज्योतिर्विज्ञान को मानव के जीवन का वरदान कहा है, क्योंकि यही एक मात्र ऐसा शास्त्र है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने आने वाले समय को समझ सकता है, भावी विपत्तियों को जान सकता है और उसके जीवन में क्या - क्या शुभ या अशुभ होने वाला है उसका पूर्वानुमान लगा सकता है।

मानव के जीवन में तो कई प्रकार की बातें आती हैं, जिनसे उसके जीवन में गति आती है और जीवन की यात्रा पूर्णता की ओर अग्रसर होती है यथा–

१.पूरी आयु कितने वर्षो की है, मृत्यु कब और किन परिस्थितियों में होगी- व्यक्ति यह जानकर अपने पूरे जीवन को सन्तुलित बना सकता है।

२.व्यक्ति की वर्तमान में जो रुग्णता बनी है वह कब तक रहेगी?

३. क्या भविष्य में किसी बड़ी दुर्घटना अथवा बीमारी का भय तो नहीं है?

४. जीवन में उसे व्यापार करना चाहिए अथवा नौकरी?

५. नौकरी प्राईवेट करें या सरकारी तथा प्रमोशन पाकर कहां तक जा सकेंगे?

६. यदि व्यापार करे तो किस वस्तु का करे, स्वतन्त्र करे अथवा पार्टनर के साथ?

७. विवाह कब और कहां होगा?

८. सन्तान कब होगी, कितनी होंगी तथा पुत्र योग है अथवा नहीं?

९. सन्तानों के भविष्य के लिए क्या किया जाए?

१०. स्वजनों अर्थात् माता - पिता एवं भाई बहन से जीवन में कैसे सम्बन्ध रहेंगे?

११. क्या पैतृक सम्पत्ति प्राप्त होगी?

१२. क्या दाम्पत्य जीवन में जीवन साथी से विचारों का तालमेल और सहयोग रहेगा?

१३.क्या स्वयं का मकान बन सकता है?

१४. क्या जीवन में कोई आकस्मिक आपदा, मानहानि अथवा जेल यात्रा का भय तो नहीं है, और उसे किस प्रकार से टाला जा सकता है?

१५. क्या आय के अन्य स्रोत भी हो सकते हैं और वे कौन - कौन से होंगे?

१६. क्या विदेश यात्रा कर सकते हैं?

ये तो कुछ ही प्रश्न हैं। व्यक्ति के जीवन में सैकड़ों आकांक्षाएं होती हैं, सैकड़ों प्रकार के उतार - चढ़ाव आते हैं और वह उनसे कतरा कर नहीं निकल सकता। शुतुरमुर्ग की भांति रेत में सिर गाड़ देने से आंधी टल नहीं जाती और समझदार व्यक्ति वही होते हैं जो जीवन का पूर्वानुमान करते हुए, सही योजनाओं के द्वारा अपने जीवन को व्यवस्थित बनाने के प्रयास करते ही रहते हैं। जब जीवन व्यवहारिक रूप से निश्चिन्त और सफल होगा, तभी मन में आनन्द की हिलोर उठेगी, तभी ईश्वर के प्रति चिन्तन विकसित होगा और तभी अध्यात्म की बातें सुखद लगेंगी।

आश्चर्य है, ऐसा श्रेष्ठ विज्ञान जो मनुष्य को जीवन की दोनों यात्राएं भौतिक व आध्यात्मिक सम्पन्न करवाने के लिए तत्पर है और दैव योग से पूज्यपाद गुरुदेव के रूप में एक प्रकार से **वाराह मिहिर** ही साक्षात् उपस्थित हैं, तो इसकी इतनी उपेक्षा और इस क्षेत्र में इतना अधूरापन क्यों? निश्चित रूप से यह प्रश्न प्रत्येक विचारशील पाठक को झकझोर कर रख ही देगा, और व्यक्ति अभी भी सचेत नहीं हुआ तो पुनः इस विज्ञान की अवनति अथवा इस क्षेत्र में अधकचरे व्यक्तित्वों का वर्चस्व ही न स्थापित हो जाए।

डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली एवं ज्योतिष विद्या आज भारत वर्ष में पर्यायवाची शब्द बन चुके हैं, कितने ही जिज्ञासु उनके रचित ग्रंथ पढ़ कर ज्योतिष का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं

न त्वहं कामये राज्यं

"न मुझे राज्य और भोग की लिप्सा है, न सुख, वैभव, ऐश आराम की। न मेरे हृदय में किसी प्रकार की कामना या इच्छा है, और न ही मैं किसी से कुछ चाहता हूं। मेरी तो मात्र एक ही इच्छा शेष है कि शरीर का रक्त, मज्जा, प्राण और रोम-रोम मानव कल्याण के लिए समर्पित हो तथा शीघ्रातिशीघ्र पुनः देव दुर्लभ सिद्धाश्रम में पहुंच कर शेष जीवन उच्चकोटि की साधना में व्यतीत करूं।"

मेरे पिता पं० लीलाधर शास्त्री भारत के विख्यात वैद्यों में से एक थे, उनका इकलौता पुत्र होने के कारण मुझ पर उनका विशेष स्नेह था, यद्यपि उन्हें कई जड़ी-बूटियों का ज्ञान था, पर दमा (अस्थमा) के क्षेत्र में वे अद्वितीय थे।

उनका शरीर काफी भारी था, और दालान में लगे झूले पर वह प्रातः आठ बजे आकर बैठ जाते, तब तक दूर-दूर से आए रोगियों की लाइन सी लग जाती, यह लाइन कई बार तो एक - दो फर्लांग तक लम्बी हो जाती थी। पिताज़ी रोगी को क्रम से ही देखते थे, चाहे मंत्री हो या अधिकारी, पंक्ति के बीच किसी को भी नहीं देखते थे।

वह नाड़ी विशेषज्ञ थे और रोगी की नाड़ी देखते ही समझ जाते थे कि उसे किस प्रकार का अस्थमा है। वह झूले पर एक खाली टोकरी तथा दो प्रकार की पुड़िया रखते थे, एक में सफेद तथा दूसरे में लाल गोलियां होती थीं, प्रत्येक पुड़िया में तीस दिन की खुराक, तीस गोलियां होती थीं। एक रोगी से वह तीन सौ रुपये लेते और उस टोकरी में डाल देते। जब टोकरी पूरी भर जाती तो वह उठ जाते और अन्दर चले आते। इसके बाद कोई लाख रुपये भी देता, तब भी वह न तो रोगी को देखते और न दवा ही देते।

दूसरे दिन फिर नए सिरे से लाइन लगती, इसलिए हमारे घर के बाहर रात्रि तीन बजे से ही लाइन लगनी शुरु हो जाती।

सन् ७६ में, जब उन्हें विश्वास हो गया कि अब वह कुछ ही क्षणों के मेहमान हैं, तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और दमा से सम्बन्धित उस अचूक नुस्खे को समझाया, **उस समय माननीय राजेन्द्र प्रसाद जी के बाल्यकाल के मित्र मिथिलानन्दन झा, रघुवीर शरण जी आदि भी उपस्थित थे।**

पिताजी ने मरते समय पहली बार रहस्योद्घाटन किया कि जब मैं छोटा था तथा बहुत अधिक बीमार था, तब एक दिन अचानक एक युवा सन्यासी **निखिलेश्वरानन्द जी** घर पर आ गए थे, उनके पुण्य प्रभाव से ही मैं मरते-मरते बच सका था, तथा **जाते-जाते उन्होंने ही पिताजी को दमा से सम्बन्धित वह अचूक नुस्खा बताया था, जिसके बल पर वह पूरे भारतवर्ष में विख्यात हो सके** तथा अतुलनीय धन, यश, मान-प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। मेरे पिताजी भारतवर्ष के पहले वैद्य थे, जो केवल एक नुस्खे के बल पर करोड़पति बन सके। वह **निखिलेश्वरानन्द जी** को अपना गुरु मानते तथा उन्होंने उनका फोटो पूजा स्थान में रखा हुआ था। अपने 'इष्ट' के रूप में भी वह गुरुदेव को ही मानते और गुरु मंत्र का निरन्तर जप करते रहते।

मृत्यु के समय उन्होंने कहा— यह शरीर और प्राण, यह धन, वैभव और प्रतिष्ठा सब कुछ गुरुदेव का दिया हुआ है, तू जाकर उनके चरणों में अपने-आपको समर्पित कर देना— और 'नारायण-नारायण' कहते हुए वह ब्रह्मलीन हो गए। उनके जीवन के अन्तिम क्षणों में ही **मुझे ज्ञात हो सका कि निखिलेश्वरानन्द जी ही वर्तमान गृहस्थ रूप में श्रीमाली जी के नाम से विद्यमान हैं।** मैं पिताजी की मृत्यु के दो महीने बाद जोधपुर पहुंचा, उस समय मेरे साथ मिथिलानन्दन झा, श्री रघुवीर शरण और सत्यानन्द जी आदि थे। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और जब पिता श्री के देहावसान के बारे में बताया तो उनकी आंखें नम हो आईं।

जब मैंने **पांच लाख रुपये** श्रद्धावश उनके चरणों में रखते हुए कहा कि यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें— तो वह बोले— **"न त्वहं कामये राज्यं न भोग्यं न च वैभवम्"** अर्थात् मुझे न राज्य की इच्छा है, न भोग की और न वैभव की— और कहते-कहते उठ खड़े हुए। **सामने पड़े पांच लाख के नोट अपनी हीनता और गुरुदेव की उच्चता की कहानी स्वयं कह रहे थे, उन्होंने उस तरफ ताका भी नहीं।**

मुझे इस अवसर पर पिताजी का एक कथन स्मरण हो आया— वह आयुर्वेद के भण्डार हैं, उनके बताए हुए एक नुस्खे से मैं करोड़पति हो सकता हूं, तो उनके पास तो ऐसे हजारों नुस्खे हैं, जो एक से एक बढ़कर हैं, कब यह संसार उनके ज्ञान को . . . व्यक्तित्व को समझ सकेगा और आयुर्वेद का लाभ उठा सकेगा?

– प्रेषक
रघुवीर बारोटकर,
बम्बई
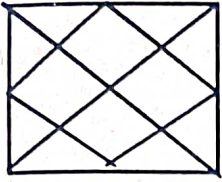
ज्योतिष प्रश्नोत्तर

सुनील कुमार सिन्हा, पटना
प्रश्न— **लम्बित मुकदमे का निर्णय क्या होगा?**
उत्तर— आपके पक्ष में नहीं।

अरुण कुमार चौबे, भिलाई
प्रश्न— **मैं राजनीति में किस शिखर तक जाऊंगा?**
उत्तर— राजनीति के क्षेत्र में सफलता प्राप्ति नहीं।

हरीराम भादू, होशंगाबाद
प्रश्न— **आर्थिक समस्या का हल किस विधि से करूं?**
उत्तर— भुवनेश्वरी साधना द्वारा।

प्रभाकर पी० बेजांकी, नांदेड़
प्रश्न— **क्या परीक्षा में सफलता मिलेगी?**
उत्तर— हां।

दत्त सखाराम कांबले, नांदेड़
प्रश्न— **दसवीं कक्षा में पास होऊंगा या नहीं?**
उत्तर— सफलता प्राप्ति कुछ कठिनाई के बाद ही संभव।

सुधीर वी. कालण, रायगढ़
प्रश्न— **मेरी असह्य पीड़ा शारीरिक या तांत्रिक, उपाय बताइये।**
उत्तर— त्रिपुर भैरवी साधना।

श्रीमती शीला श्रीवास्तव, भोई (मेघालय)
प्रश्न— **पुत्री का शैक्षिक भविष्य कैसा है?**
उत्तर— किसी विशिष्ट क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति करेगी किंतु डॉक्टर बनना कठिन है। राहु शांति का उपाय अवश्य करें।

श्यामसुंदर प्रसाद गुप्ता, सरगुजा
प्रश्न— **पदोन्नति कब तक?**
उत्तर— विलम्ब से, किन्तु-तीन वर्ष के पश्चात् स्थितियों में सुधार होगा।

मोहिंदर पाल सिंह, चण्डीगढ़
प्रश्न— **नौकरी या बिजनेस में क्या करूं?**
उत्तर— शासकीय सेवाओं में आपको पूर्ण मानसिक सुख संतोष मिलेगा।

अरुण अग्रवाल, यमुनानगर
प्रश्न— **क्या फिल्मों में काम करने का अवसर मिलेगा?**
उत्तर— फिल्म का व्यवसाय आपके लिए अनुकूल सिद्ध हो सकता है।

अम्बिका, नारनौल
प्रश्न— **घर में आर्थिक समस्या कब तक समाप्त होगी?**
उत्तर— वर्ष ९४ आपके सम्पूर्ण परिवार के लिए भाग्योदयकारी सिद्ध होगा।

प्रकाश कंवर राठौड़, सीकर
प्रश्न— **क्या मुझे सरकारी नौकरी मिलेगी?**
उत्तर— हां। आप पढ़ाई पूर्ण कर लें नौकरी मिलने का योग अगले वर्ष के अंत तक है।

श्रीमती मीनाक्षी पांडे, ईटानगर
प्रश्न— **मेरे पति का प्रमोशन कब तक?**
उत्तर— वर्तमान में स्थिति कठिन है।

देवी प्रसाद, चण्डीगढ़
प्रश्न— **रिटायर पिताजी का मकान मेरे नाम कब तक होगा?**
उत्तर— छह माह के भीतर।

अशोक टी. पंडित, कोल्हापुर
प्रश्न— **आकस्मिक संकट आते रहते हैं, क्या करूं?**
उत्तर— महाकाली साधना।

शरद चंद्र यादव, आजमगढ़
प्रश्न— **प्रशासनिक सेवा में जाने का योग कब तक?**
उत्तर— प्रारम्भ में क्लास टू की सेवाओं हेतु प्रयास करें। उसी में उन्नति होगी।

बाबूलाल आंचले, राजनांदगांव
प्रश्न— **कर्ज से मुक्ति कब होगी?**
उत्तर— किसी रिश्तेदार की मदद से शीघ्र ही।

विनोद कुमार गुप्ता, राजा का रामपुर
प्रश्न— **क्या नया व्यवसाय आरम्भ करें?**
उत्तर— हां, दिनांक १३-५-९४ को प्रारम्भ करें।

कृष्णकांत मेहता, बैंगलोर
प्रश्न— **मेरी पुत्री का विवाह कब तक?**
उत्तर— यदि दो वर्ष तक स्थगित कर सकें तो भविष्य में उत्तम वर प्राप्त होगा।

बृज चोपड़ा, अमृतसर
प्रश्न— **सम्पन्नता किस काम में मिल सकती है?**
उत्तर— वीडियो फिल्म व्यवसाय में किसी भी प्रकार से जुड़कर।

रामदास साहू, जबलपुर
प्रश्न— **नौकरी में प्रमोशन कब तक?**
उत्तर— समयबद्ध प्रमोशन ही प्राप्त हो सकेगा।

केवलचन्द शर्मा, बैंगलोर
प्रश्न— **व्यापार में पूर्ण सफलता कब तक मिलेगी?**
उत्तर— वर्तमान व्यवसाय के स्थान पर नया व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रयास करें।

विजय कुमार, मुंगेर
प्रश्न— **क्या ज्योतिष की दृष्टि से प्रबल अप्सरा सिद्धि योग बनता है?**
उत्तर— ज्योतिषीय दृष्टि से यक्षिणी साधना योग अधिक प्रबल है।

सतीश कुमार, चंडीगढ़
प्रश्न— **स्थायी कार्य नहीं, मानसिक कष्ट।**
उत्तर— बगलामुखी साधना सम्पन्न करें।

राजेश शर्मा, जबलपुर
प्रश्न— **मेरी नौकरी कितनी उम्र में लगेगी?**
उत्तर— ३२ से ३५ वर्ष के बीच ही प्राइवेट सेक्टर में अच्छी नौकरी प्राप्त होगी।

रमेश कुमार, नई दिल्ली
प्रश्न— **स्थायी नौकरी कब और कैसी मिलेगी?**
उत्तर— आजीविका हेतु नौकरी पर निर्भर रहने की अपेक्षा पार्टनरशिप में कोई कार्य प्रारम्भ करें।

अरुण कुमार, समस्तीपुर
प्रश्न— **मुझे एन० डी० ए० में सफलता मिलेगी?**
उत्तर— सफलता संदिग्ध है।

★

कूपन क्रमांक :- ११७ (**कूपन पर ही प्रश्न स्वीकार्य होंगे**)

नाम :-..
जन्म तिथि :- ....महीना ....सन्..............
जन्म स्थान .... जन्म समय ....
पता (स्पष्ट अक्षरों में) :-...
....
आपकी केवल एक समस्या :- ....

कृपया निम्न पते को काटकर लिफाफे पर चिपकाएं :-

मंत्र - तंत्र - यंत्र विज्ञान कार्यालय
३०६, कोहाट इन्क्लेव, पीतम पुरा, नई दिल्ली-११००३४

व्यक्तिगत रूप से उत्तर प्राप्त करने के लिए केवल पोस्ट कार्ड(पता लिखा) प्रेषित करें

मेष - स्वास्थ्य की दृष्टि से यह माह पीड़ादायक रहेगा अन्यथा आय की दृष्टि से प्रचुर लाभ होगा। पारिवारिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आएगी। कलह व तनाव की स्थितियों की समाप्ति होगी। राज्य पक्ष से किंचित कष्ट हो सकता है, किन्तु निर्णय आपके ही पक्ष में होगा। सगे-सम्बन्धियों से मेल-मिलाप में वृद्धि होगी। विवाह वार्ता में गतिरोध उत्पन्न होगा, पड़ोसियों से सम्बन्ध तनावपूर्ण हो सकते हैं। शत्रु पक्ष प्रबल रहेगा, किन्तु कोई आघात नहीं कर पाएगा। आध्यात्मिक चिन्तनों में न्यूनता आएगी। किसी गुप्त स्रोत से धन प्राप्ति की प्रबल सम्भावनाएं हैं। शेयर आदि में धन लगाना अनुकूल होगा।

यात्राएं बार बार करनी पड़ सकती है किन्तु उनसे कोई उपलब्धि विशेष नहीं होगी।

मिथुन - जलाघात से बचने का प्रयास करें, आकस्मिक दुर्घटना योग प्रबल है। शत्रुपक्ष पीड़ा दे सकता है। शत्रु शांति के लिए उपयुक्त प्रयास करना आवश्यक है। कार्यालय में स्थिति सामान्य रहेगी, किन्तु स्थानान्तरण की प्रक्रियाएं कष्टदायक सिद्ध हो सकती हैं। मन में क्षोभ रहेगा। धन का अपव्यय प्रबल रहेगा। यात्राएं अनुकूल नहीं कही जा सकती। जमा पूंजी का ह्रास होगा। सन्तान उन्नति करेगी। पत्नी का स्वास्थ्य प्रायः चिन्ताजनक ही बना रहेगा। इस पूरे माह विचित्र सी उथल-पुथल बनी रहेगी। धन सम्बन्धित मामलों में ध्यान रखें। अत्यधिक विश्वास खेदजनक सिद्ध हो सकता है। आन्तरिक शांति के लिए नियमित रूप से साधना करते रहें।

सिंह - दौड़ भाग बनी रहेगी। मानसिक उद्विग्नता रहेगी। पुत्र के स्वास्थ्य के कारण खेद हो सकता है। कार्यालय में अव्यवस्था बढ़ेगी। अधिकारी वर्ग प्रतिकूल रहेगा। सहयोगियों की ओर से भी कठिनाइयां आएंगी, किन्तु मनोबल श्रेष्ठ रूप से बना रहेगा। यात्राएं लाभदायक रहेंगी। कोई पूर्व परिचित सहयोगी सिद्ध होगा। आय की स्थिति संतोषजनक रहेगी तथा खर्चों पर नियंत्रण बना रहेगा। यह माह विशेष रूप से अधिकारी वर्ग, अर्द्ध सरकारी वर्ग तथा व्यवसायियों के लिए ही अधिक लाभदायक है। नया कार्य आरम्भ कर सकते हैं। अच्छे सहयोगी व पूंजी की व्यवस्था सुलभ होगी।

वृषभ - कार्यालय में चला आ रहा तनाव समाप्त होगा, जिससे मन में सन्तोष रहेगा। यात्रा के अवसर उपलब्ध होते रहेंगे एवं इस माह यात्राओं के कारण व्यस्तता रहेगी। शिरशूल का कष्ट प्रबल होगा। पारिवारिक स्थितियों में प्रायः विखराव आएगा एवं सन्तानों की अवज्ञा से मन में खिन्नता रहेगी। व्यसन का त्याग करना आवश्यक है। मित्र वर्ग अनुकूल नहीं सिद्ध होगा। ऋण के लेन-देन से बचें। इस माह सामान्यतः सावधानी रखना अपेक्षित है अन्यथा किसी बड़े धोखे की सम्भावना है। धन का आगमन सन्तोषजनक रहेगा। सामाजिक प्रतिष्ठा में न्यूनता आएगी।

कर्क - घर में उत्सव का वातावरण रहेगा। अतिथियों व इष्ट मित्रों का आवागमन बना रहेगा। आमोद - प्रमोद के अनेक अवसर उपलब्ध होंगे। धन की स्थिति से मन में संतोष रहेगा। यात्राएं अत्यधिक आवश्यक होने पर ही करें। राज्यपक्ष की ओर से कुछ बाधा सम्भावित। निर्माण कार्यों में प्रगति होगी, व्यापार की स्थितियों में सुधार आएगा। नयी योजनाओं के प्रति चिन्तन प्रारम्भ होगा। व्यवहारिकता का अभाव रहेगा। शत्रु पक्ष पीड़ादायक न होते हुए भी चालें ढूंढता रहेगा। पत्नी की ओर से कुछ अप्रिय स्थिति का सामना करना पड़ सकता है।

कन्या - सामान्य माह, किन्तु धन का अपव्यय बना रहेगा। आकस्मिक खर्चों के कारण पूरे माह अस्त -व्यस्त रहेंगे। शारीरिक पीड़ा अधिक रहेगी तथा कोई पुराना रोग उभर आने की भी सम्भावना है। मन में अशांति रहेगी। जीवन के प्रति मन में निराशाजनक विचार आएंगे। मनोबल बनाए रखना आवश्यक। यात्राओं का अवसर लाभदायक सिद्ध होगा। सामाजिक गतिविधियां बढ़ेंगी। शत्रुपक्ष हताश होगा। लोकापवाद से बचें। जोखिम से भरे कार्यों में रुचि न लें, कष्ट पहुंच सकता है। दाम्पत्य जीवन में अनुकूलता रहेगी।

तुला - कर्त्तव्य के प्रति मन में उपेक्षा प्रबल रहेगी। कल्पना लोक में विचरण करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। धन हानि होगी। जमा पूंजी भी खर्च होने की सम्भावना है। परिवार से सुख मिलेगा। मित्रों से सम्बन्ध औपचारिक ही कहे जा सकते हैं। किसी बड़ी योजना को बिना सोचे-विचारे प्रारम्भ करना बुद्धिगता नहीं कहा जा सकता। अध्ययन के प्रति रुचि विकसित होगी तथा आध्यात्मिकता का भी विकास होगा। व्यर्थ में विचरण की प्रवृत्ति बढ़ेगी। विवाह में अड़चनें आएंगी। सम्पूर्ण रूप से अस्त-व्यस्त माह, किन्तु २० तारीख के पश्चात् स्थिति में अनुकूल परिवर्तन प्रारम्भ होगा। नवीन सम्पर्कों पर अधिक विश्वास करना फलप्रद नहीं रहेगा।

धनु - प्रवास लाभदायक रहेगा। नवीन परिचय सुखद सिद्ध होंगे। जीवन की जड़ता व नीरसता समाप्त होगी। स्वास्थ्य थोड़ा नरम रहेगा। कार्यालय की स्थितियां सामान्य रहेंगी। सामाजिक जीवन से अरुचि होगी। वैवाहिक प्रयासों में तीव्रता आएगी। आय की स्थितियों में भी सुधार होगा तथा पूंजी बढ़ेगी। सन्तानों के स्वास्थ्य से कुछ कष्ट हो सकता है। राज्य पक्ष अनुकूल रहेगा। शत्रु शांत रहेंगे। नवीन कार्य आरम्भ करने के लिए समय अनुकूल नहीं है। जीवन साथी से चला आ रहा विवाद समाप्त होगा। विद्यार्थियों के लिए विशेष अनुकूल माह। यात्राएं मध्यम फलदायक रहेंगी।

कुंभ - जोखिम से बचें। एकाएक किसी कार्य या योजना का प्रारम्भ न करें। स्थितियों के उतार - चढ़ाव पर कड़ी दृष्टि रखें। गोपनीयता भंग न होने दें। विश्वासघात की भी सम्भावना है। अर्थोपार्जन की स्थितियों में भी कठिनाई बनी रहेगी। वाहन सुख प्राप्त होगा। जीवन साथी से नहीं बनेगी। पुत्र उपेक्षा करेंगे। पड़ोसियों से भी सम्बन्ध तनाव पूर्ण हो सकते हैं। शारीरिक सुख प्राप्त होगा तथा मानसिक शांति भी बनी रहेगी। आत्म केन्द्रित रहते हुए इस समय का सदुपयोग साधनाओं व आध्यात्मिक उन्नति के लिए करें। शेयर मार्केट से लाभ प्राप्त होगा। आगामी समय थोड़ा संकट से भरा हो सकता है।

वृश्चिक - किसी पुराने विवाद का अंत होगा तथा भविष्य में भी सुलह समझौता बना रहेगा। कार्यो की अधिकता रहेगी। जीवन साथी के प्रति मन में सम्मान व अपनत्व होगा। विगत कुछ समय से चली आ रही धन की समस्या सुलझेगी। क्रीड़ा में मन अधिक लगेगा। प्रतियोगियों के लिए सफलतादायक माह। नवीन व्यवसाय के द्वारा लाभ प्राप्त होने की सम्भावनाएं क्षीण हैं। निर्माण कार्यों में बाधा बनी रहेगी। मन में धार्मिक विचारों की अधिकता रहेगी। यात्रा सफलतादायक सिद्ध होगी। विवाह आदि में कुछ विलम्ब सम्भावित है।

मकर - मन में उत्साह रहेगा। कोई विशेष बात आपके पक्ष में सामने आएगी। मित्रों से लाभ मिलेगा। अधिकारी वर्ग सहायक सिद्ध होगा। आपसी विवादों को कूटनीति के स्थान पर मेलजोल से सुलझाने का प्रयास करें। धनागम सामान्य रहेगा। खर्चों की अधिकता रहेगी। यात्राएं फलप्रदायक सिद्ध होंगी। मनोरंजन के भरपूर अवसर उपलब्ध होंगे। परिवार में किसी के स्वास्थ्य के कारण खिन्नता रह सकती है। माता-पिता की ओर से किंचित तनाव सम्भव। मासान्त में आकस्मिक धन लाभ सम्भव। जमा पूंजी की ओर विशेष ध्यान करें।

मीन - इस माह कुछ परिवर्तन होंगे जो सुखद सिद्ध होंगे। नवीन विचार सूझेंगे तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास होगा। पूर्व परिचय लाभदायक सिद्ध होंगे। प्रेम-प्रसंगों में अनुकूलता आएगी। आय की स्थिति सामान्य रहेगी, किन्तु व्यय पर नियंत्रण बना रहेगा। यात्राएं फलप्रद व मनोरंजक सिद्ध होंगी। मित्रों का साथ निष्फल सिद्ध होगा। मन में शांति रहेगी। राज्य पक्ष की ओर से उपेक्षा प्राप्त होगी। शत्रु शांत होंगे। सामाजिक उन्नति होगी तथा यश, प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

★

व्रत पर्व एवं त्यौहार

०४.०४.९४	चैत्र कृष्ण ९	मन इच्छा पूर्ण सिद्धि दिवस
११.०४.९४	**चैत्र शुक्ल १**	**नवरात्रि प्रारम्भ**
१६.०४.९४	चैत्र शुक्ल ५	श्री पंचमी
१९.०४.९४	चैत्र शुक्ल ८	दुर्गा अष्टमी
२०.०४.९४	चैत्र शुक्ल ९	राम नवमी
२१.०४.९४	**चैत्र शुक्ल १०**	**पूज्यपाद सद्गुरुदेव जन्म दिवस**
२२.०४.९४	चैत्र शुक्ल ११	कामदा एकादशी
२५.०४.९४	चैत्र शुक्ल १५	हनुमान जयन्ती
१३.०५.९४	वैशाख शुक्ल ३	अक्षय तृतीया,परशुराम जयन्ती
१६.०५.९४	वैशाख शुक्ल ५	शंकराचार्य जयन्ती
१८.०५.९४	वैशाख शुक्ल ७	गंगा सप्तमी
१९.०५.९४	वैशाख शुक्ल ९	जानकी जयन्ती
२०.०५.९४	वैशाख शुक्ल १०	महावीर कैवल्य ज्ञान
२१.०५.९४	वैशाख शुक्ल ११	मोहनी एकादशी
२४.०५.९४	वैशाख शुक्ल १४	नृसिंह जयन्ती
२६.०५.९४	ज्येष्ठ कृष्ण २	ज्ञान जयन्ती

महर्षि व्यास के परम विद्वान पुत्र शुकदेव एक अवसर पर अपने पिता से कुछ आगे चलते हुए कहीं गोष्ठी में जा रहे थे और महर्षि व्यास अपनी आयु अधिक होने के कारण मन्द गति से गतिशील थे। आगे कुछ रूपवती अप्सराओं का एक दल सरोवर में जल क्रीड़ा करता हुआ किलोलें कर रहा था। शुकदेव उनके समीप से होकर निकल गए, किन्तु अप्सराओं के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। थोड़ी ही देर बाद जब महर्षि व्यास उस झुंड के समीप आए तो समस्त अप्सराओं में खलबली मच गयी और वे एक दूसरे को धक्का देती हुई वस्त्र पहिनने की हड़बड़ी में पड़ गयीं। यह देखकर महर्षि व्यास का क्रोध युक्त होना स्वाभाविक ही था, उन्होंने अप्सराओं को धिक्कारते हुए कहा कि जब मेरा युवा पुत्र तुम्हारे समीप से निकला तब तो तुम्हें कोई लज्जा नहीं आई और जब मैं वयोवृद्ध पुरुष तुम्हारे समीप से निकल रहा हूं तो तुम्हें इस प्रकार लज्जा व भय अनुभव हो रहा है। अन्य अप्सराएं तो चुप रहीं, किन्तु उनमें से एक अनुभवी व किंचित प्रौढ़ अप्सरा ने सहज उत्तर दिया — **''महर्षि यही तो खेद है कि आप ''पुरुष'' हैं। आपके पुत्र जब हमारे समीप से निकले तो वे आत्मवत् स्थिति में रहते हुए स्वयं में लीन थे,** उन्हें भान ही नहीं कि हम कौन हैं और क्या कर रही हैं इसी से हमें कोई लज्जा भी अनुभव नहीं हुई, किन्तु आपने कुछ दूर से देखा कि शायद स्त्रियां हैं, पास आकर पुनः आंखें मीचीं, कि क्या ये निर्वस्त्र होकर स्नान कर रही हैं! और आपकी आंखों के भाव से ही हमें लज्जा का अनुभव हुआ।''

यही कथा आज तंत्र के विषय में भी कही जा सकती है। जो आत्म - चक्षु से इसे देख रहा है उसके लिए कोई हड़बड़ाहट या विकृति नहीं, किन्तु शेष सभी की आंखों में एक चमक उतर आती
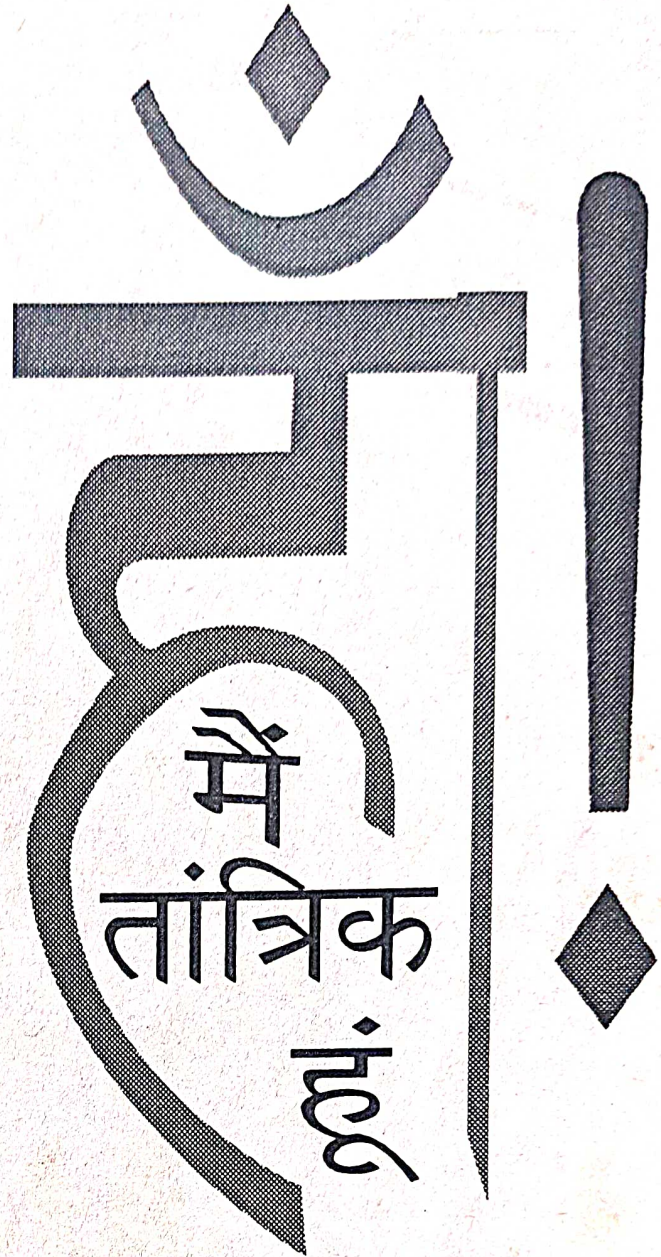
"दरअसल मुझे यों नहीं कहना चाहिए था, इस प्रकार से तो मेरा परिचय पूर्ण होता नहीं, कुछ शेष व अस्पष्ट भी रह ही जाता है।

लेकिन यही मेरा सही व संक्षेप में परिचय है और यह कहते हुए मुझे कोई झिझक या भय भी नहीं कि - हां! मैं तांत्रिक हूं. . . "

है कि — **क्या? क्या तंत्र? अर्थात् पंचमकार! अर्थात् मांस-मदिरा और मैथुन? यह तो घोर पाप है !** सीमित दृष्टि केवल पाप-पुण्य का विवेचन कर, अपने अन्दर की विकृतियों को थोड़ा गुदगुदा कर, एक खास नजरों से चटखारे लेकर तृप्त हो जाती है। पुनः-पुनः वही लिखना पड़ता है कि नहीं, 'तंत्र का यह स्वरूप नहीं।' तंत्र का वास्तविक स्वरूप तो कुछ और है, मांस का अर्थ कुछ और है, मदिरा का अर्थ कुछ और है तथा मैथुन का अर्थ शिव - शक्ति का मिलन है। **अब समय आ गया है कि इस तथ्य का खुलासा कर ही दिया जाए** और स्पष्ट कर दिया जाए कि वास्तव में तंत्र क्या है, तांत्रिक कौन है, पंचमकार क्या है, और उनका वास्तविक प्रयोग क्या है। जिस प्रकार से स्पष्ट शब्दों में मैंने कहा कि हां! मैं तांत्रिक हूं, उसी प्रकार दो टूक स्पष्ट शब्दों में कहता हूं कि **वास्तव में जो पंचमकार हैं वे वास्तविक हैं, उनका कोई दूसरा अर्थ है ही नहीं, वे उसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं जिस रूप में उनकी संज्ञा है। अश्लील या श्लील होना व्यक्ति - विशेष की दृष्टि होगी।** तांत्रिक और तंत्र के वेत्ता की दृष्टि में वे केवल स्थितियां मात्र हैं, न श्लील न अश्लील, ठीक महर्षि शुकदेव की भांति।

मैंने प्रारम्भ में ही कहा कि मेरा यही परिचय है कि मैं तांत्रिक हूं, जो पूर्ण भी है और अपूर्ण भी, क्योंकि यथार्थ रूप से एक विद्वान की दृष्टि में इससे अधिक परिचय की आवश्यकता ही नहीं, अतः यही पूर्ण परिचय है, किन्तु समाज की दृष्टि में यह अपूर्ण है, क्योंकि उसकी परिभाषाएं सीमित हैं, दृष्टि एकांगी है और सही कहा जाए तो लोलुप हैं। मैं इसी से समाज से कहना चाहूंगा कि मैं सौन्दर्यवान हूं, मैं रूपवान हूं, मैं करुणामय हूं, मैं आस्थावान हूं, मैं सृजन की क्षमता से युक्त हूं, मैं शिवमय हूं, मैं शक्तिमय हूं और यह सूची यहीं पर समाप्त नहीं होती, जिससे एक ही शब्द में पुनः कहना पड़ता है कि, **मैं तांत्रिक हूं!**
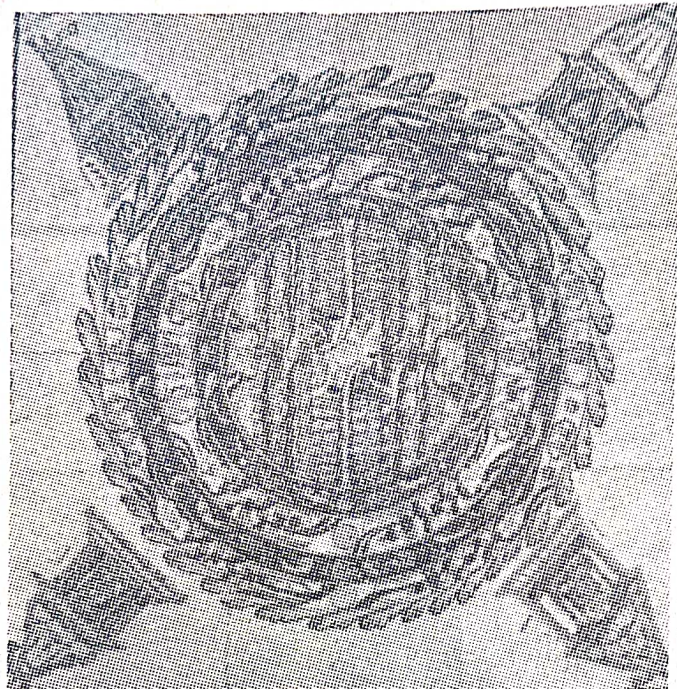
तंत्र जीवन का सौन्दर्य है, तंत्र एक दर्प है, तंत्र कोई भोग की लिजलिजाहट या भोग, मैथुन में डूबा विषय नहीं। यह तो सक्षम पुरुषों के जीवन की विषय वस्तु है और सक्षम पुरुष शब्द उच्चरित करते ही जो बिम्ब बनता है, वह किसी बलिष्ठ पुरुष का ही होता है, **जबकि सक्षम पुरुष तो वह है जो हृदय से नारी हो, सृजन की क्षमता से युक्त हो, पालन करने के आग्रह को अपने में समेटे हो,** ममतामय हो, करुणामय हो, आस्थावान और तेज युक्त हो। अर्द्धनारीश्वर हो, भगवान शिव की करुणा और जगदम्बा की पालन- क्षमता समेटे हो, जिसकी एक आंख में क्रोध झलक रहा हो तो वहीं दूसरी आंख में प्रेम तैर रहा हो। विनष्ट कर देने की क्षमता रखता हो तो पुनः निर्मित कर देने का साहस भी समेटे हो। ऐसे ही व्यक्ति से जीवन की पूर्णता निर्मित होती है। ऐसे ही व्यक्ति के अन्दर गुरुत्व समाहित हो सकता है। ऐसा ही व्यक्ति सकारात्मक रूप से कुछ प्राप्त कर सकता है।

सही अर्थों में देखें तो हम और आप प्रत्येक तांत्रिक ही तो हैं, अन्तर केवल तंत्र का है, प्रयुक्त किए जाने वाले यंत्र का है। एक मिस्त्री अपने हाथ में छन्नी लेता है और मकान गढ़ देता है। एक लुहार अपने हाथ में हथौड़ी लेकर कोई ढांचा खड़ा कर देता है। कलाकार अपने हाथ में कूची लेकर चित्र बना देता है और लेखक कलम लेकर काव्य रच देता है। आस-पास चारों ओर प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रचना में तल्लीन है ही। प्रत्येक ने एक **''मद्य''** का पान कर रखा है और अपने कार्य को पूर्णता देने में खुमारी में डूबा हुआ है। प्रत्येक ने एक **'मुद्रा'** धारण कर रखी है। प्रत्येक ने अपने **मांस** अर्थात् ''मम अंश'' को लीन कर रखा है। प्रत्येक **'मत्स्य'** की भांति गहरे जाकर तल्लीन है और एक सुखद रचना के आनन्द में मग्न है, जो कि सांसारिक भाषा में **मैथुन** के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? प्रत्येक पुरुष में एक स्त्री छिपी है और प्रत्येक स्त्री में एक पुरुष और वह आत्म रूप से उससे मिलने के प्रयास में संलग्न है ही। यही तंत्र भी कहता है, इतना ही तो तंत्र समझाने का आग्रह करता है, किन्तु उसे पूर्वाग्रहों से भी अधिक दुराग्रह में बद्ध कर दिया गया है। **यह केवल दमित वासनाएं और कुछ का कुछ खोजने की दबी-छिपी प्रवृत्ति का अंग नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?** तंत्र

ऊर्जा का एक विस्फोट है, सृजन विशेष का क्षण है और इस विस्फोट की चरम परिणति को स्त्री-पुरुष मिलन के क्षणों से परिभाषित करने के अतिरिक्त भला किन अर्थों में किया जा सकता था? **यथार्थ तांत्रिक को तो एक स्त्री देह की आवश्यकता होती ही नहीं, क्योंकि वह स्वयं ही रजमय बनता हुआ उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है और स्त्री भी स्वयं वीर्यमय बनती हुई तंत्र की ज्ञाता बन सकती है, किन्तु सामान्य जन के लिए इसे इस रूप में परिभाषित करने का परिणाम यह हुआ कि मैथुन ही तंत्र का सर्वाधिक चर्चित व ख्याति प्राप्त तत्व हो गया।** मैथुन को आधार बना कर प्राचीन काल में ही विकृतियां नहीं पनपीं वरन् आज तक तन्त्र के नाम पर जो कुछ भी कहा या रचा जा रहा है, वह भी अधकचरा व अपूर्ण है। मनुष्य की जो मूल प्रवृत्ति होती है वही उसके विचारों में प्रकट होती है, **और इसी से छद्म बुद्धिजीवियों, छद्म कलाकारों ने अपनी रचनाओं में तन्त्र का अर्थ मैथुन ही प्रगट किया।**

तंत्र मनुष्य की इसी प्रवृत्ति को जो उसकी मूल प्रवृत्ति है, उसको स्पष्ट रूप से कहता है, उसका निदान बताता है। तंत्र इतना हल्का विषय नहीं है, तंत्र इतना सीमित विषय भी नहीं है, तंत्र इतना सहज और आम चर्चा का विषय तो है ही नहीं, किन्तु आज की परिस्थितियों के सन्दर्भ में यह आवश्यक हो गया कि तंत्र का पुनर्आकलन तो कर ही लिया जाय, साथ ही तंत्र की भावभूमि को भी स्पष्ट किया जाए जिससे तंत्र के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण हो, नूतन चेतना का आविर्भाव हो, नए वातावरण का सृजन किया जा सके।

आन्दोलनों, प्रचारों और राजनीति के सहारे तो बहुत प्रयास किए जा चुके हैं अब क्यों न तंत्र के माध्यम से एक सम्पूर्ण समाज के गठन की बात सोची जाए? क्यों न इस माध्यम से एक - एक जीवन को सम्पूर्ण व परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाए? क्योंकि तंत्र ही एक ऐसा मार्ग है जो जीवन में कुछ भी त्याज्य या अश्लील घोषित नहीं करता, जो भोग के प्रति त्याग की धारणा को बल नहीं देता, जो एक शिष्ट खुलेपन का समर्थक है और रुग्ण मानसिकता के स्थान पर स्वस्थ व परितृप्त मानसिकता के सृजन का हामी है, क्योंकि त्याग की प्रवृत्ति कष्ट से अर्जित की गई प्रवृत्ति होती

तंत्र में पंचमकार उसी रूप में है जिस रूप में उनकी संज्ञा है किन्तु भोग बुद्धि प्रधान व्यक्ति के लिए नहीं वरन यथार्थ साधक के लिए जिसके समक्ष लक्ष्य स्पष्ट हो।

है, और मानव की मूल प्रवृत्ति भोग के विरुद्ध होती है। **तंत्र भोग का पर्याय नहीं है, किन्तु मनुष्य को स्वस्थ रूप से भोग मार्ग में प्रवृत्त कर शनैः शनैः उस ओर प्रवृत्त कर देता है जहां उसे स्वतः ही भोगों से अरुचि हो जाती है।** अपने गुरु के निर्देशन में पंचमकारों का सेवन करने से व्यक्ति शीघ्र ही समझ जाता है कि यह सुख उस परम सुख की तुलना में अत्यन्त तुच्छ और अस्थायी है। **तंत्र की इस उदारता का अर्थ यदि मनमाना लगा लिया गया, तो इसमें तंत्र का दोष कहां से उत्पन्न होता है?** इतना तो एक साधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी समझता है।

इसी से मैं स्पष्ट कहता हूं कि हां! तंत्र में पंचमकार उसी रूप में है, किन्तु भोगियों के लिए ही नहीं, वरन् योगियों के लिए ही, क्योंकि उनकी भाव-भूमि सर्वथा भिन्न होती है और जो व्यक्ति उस स्थिति पर अवरूढ़ नहीं हो सकते, उनके लिए भी ऐसा नहीं कि तंत्र का मार्ग बन्द हो, उन्हें कुछ अलग ढंग से उसमें प्रवृत्त होना पड़ता है, दक्षिणमार्गीय तंत्र का आश्रय लेना पड़ता है।

यदि अन्तिम लक्ष्य हमारी आंखों के सामने स्पष्ट हो, तभी स्पष्ट हो सकेगा कि तंत्र के समक्ष तो कोई भी ज्ञान या चेतना टिकती ही नहीं, क्योंकि तंत्र सृजन कर देने का विज्ञान है। कोरे उपदेशों व भटकावदार सुनहरे मार्गों की अपेक्षा दो टूक स्पष्ट सीधा रास्ता है, यह बात और है कि यह रास्ता थोड़ा पथरीला है, इसमें ठोकरें लगने का कदम - कदम पर डर है, लेकिन यह मार्ग किसी मृग - मरीचिका पर जाकर नहीं समाप्त होता, इस मार्ग के उस ओर तृप्ति का मीठा सागर है, शक्तिमयता का अनोखा अमृत है और प्रकृति से पूर्णतः तादात्म्य स्थापित कर लेने की अनोखी क्रिया है। जिसने प्रकृति से ही तादात्म्य कर लिया वह तो मां भगवती जगदम्बा का ही एक अंश हो गया, फिर वह ओछा और घटिया कहां से रह सकता है? और **इसी से यथार्थ तांत्रिक में करुणा का अपार सागर लहराता रहता है।** जिस प्रकार एक स्त्री सृजन की शक्ति से युक्त होते हुए भी अपने पुत्र के प्रति वात्सल्यमय रहती है, ठीक वही दृष्टि, वही चेतना एक तांत्रिक की होती है, जो स्थितियों का सृजन कर सकता है, वह स्वतः परम कारुणिक हो ही जाता है। यही तंत्र का आनन्द है, यही तंत्र की उच्चता है और इसी भाव-भूमि पर खड़ा होकर मैं अत्यन्त गर्व से कह रहा हूं कि – **हां! मैं तांत्रिक हूं।** ✪

कर सकता है। प्रत्येक महाविद्या के एक विशिष्ट भैरव होते हैं और उनकी साधना सम्पन्न करने के पश्चात् ही व्यक्ति महाविद्या साधना में प्रवेश का अधिकारी समझा जाता है।

उच्चकोटि की साधनाओं में व्यक्ति तभी प्रवेश कर सकता है, उच्चकोटि की अनुभूतियां पाने का संकल्प व्यक्ति के मन में तभी पनप सकता है जब वह दिन प्रतिदिन की कठिनाइयों, भय, इत्यादि से मुक्त हो जाए। सामान्य जीवन-चक्र में उलझा व्यक्ति उच्चकोटि की चैतन्यता चाह कर भी अनुभव नहीं कर पाता और इसी से उसका जीवन सामान्य बन कर रह जाता है। भैरव साधना सम्पन्न कर जहां व्यक्ति अपना दैनिक जीवन संवारता है वहीं उच्चकोटि की साधनाएं सम्पन्न

भैरवः भीषणो निगदितः श्री कालराजः

भगवान शिव के ही अंश, उन्हीं की तीक्ष्णता का एक रूप 'भैरव' अपने स्वरूप और प्रभाव में साक्षात् शिव ही हैं। भगवान शिव के गण होने के कारण कोई भी साधना भैरव आज्ञा के बिना प्रारम्भ करनी निष्फल होती है। **भगवान शिव की ही भांति अल्प से ही सन्तुष्ट होने वाले भैरव का बाल स्वरूप बटुक भैरव स्वरूप तो और भी अधिक फलदायक व सिद्धि प्रद है।** आज के युग में जबकि बाधाएं पग-पग पर बिना बुलाए चली आ रही हों। तामसिकता और व्यभिचार की प्रवृत्तियां सिर चढ़कर बोलने लगी हों तब भैरव साधना का प्रभाव स्वतः ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो गया है।

उच्चकोटि की साधनाओं में सिद्धि की बात हो या सामान्य जीवन के पक्ष— भैरव साधना को सम्पन्न किए बिना व्यक्ति न तो सामान्य जीवन में भय व बाधा रहित हो सकता है और न दस महाविद्या या इसी प्रकार की उच्चकोटि की साधनाएं सम्पन्न

"भैरव साधना के अभाव में कोई भी साधनापूर्ण समझी ही नहीं जाती, विघ्न-विनाश की स्थिति हो या शत्रु-बाधा निवारण, भैरव पूजन करना अत्यावश्यक माना गया है।

भैरव का स्वरूप उग्र और भीषण होता है किन्तु बटुक भैरव का स्वरूप तो सर्वथा शान्त और फलप्रद माना गया है जिसकी साधना सामान्य गृहस्थ साधक भी सहजता से सम्पन्न कर सकते हैं।"

कर ऐसा व्यक्तित्व और तेज प्राप्त करता है जिससे समाज में उसकी प्रतिष्ठा बनती ही है, जीवन में सन्तोष व सुख का आगमन भी होता है।

भैरव के बावन स्वरूप वर्णित किए गए हैं और इनकी साधनाएं अत्यन्त कठिन हैं। क्रोध भैरव, उन्मत्त भैरव, कपाल भैरव, चण्ड भैरव, रूरू भैरव, इन सभी की साधनाएं केवल और केवल श्मशान में ही सम्पन्न की जा सकती हैं। **जबकि बटुक भैरव समान प्रभाव रखते हुए भी सौम्य स्वरूप है, विशेष रूप से गृहस्थ साधक के लिए ही उपयोगी है और इसमें किसी भी तामसिक पदार्थ अथवा तीक्ष्ण क्रियाकलाप की आवश्यकता नहीं पड़ती।** जिस प्रकार व्यक्ति आनन्दपूर्वक स्वगृह में भगवान शिव का पूजन करता है उसी प्रकार बटुक भैरव का पूजन भी घर पर ही सम्पन्न कर सकता है। दैनिक पूजन में प्रयोग आने वाली साधना-सामग्रियों से ही पूजन-अर्चन कर उन सभी लाभों को प्राप्त कर सकता है, जिसके लिए अन्यथा श्मशान के उग्र वातावरण में बैठ कर साधनाएं सम्पन्न करनी पड़ती हैं।

घर में पितृ दोष हो, अनायास लड़ाई-झगड़े और कलह होते रहते हों कोई विशेष कारण न होने पर भी **मतभेद की स्थितियां बनती रहती हों, जायदाद के बंटवारे की समस्या आकर खड़ी हो गई हो, हत्या आदि की धमकी मिल रही हो, मानसिक सुख-सन्तोष चला गया हो,** भय और तनाव व्याप्त रहता हो या दैनिक जीवन की कोई भी समस्या होक्योंकि गृहस्थ जीवन में तो अनेक प्रकार की समस्याएं आती रहती हैं। अलग-अलग व्यक्ति के साथ अलग-अलग समस्या रहती है और **जिस पर जो बीतती है उसको वही जानता है। प्रत्येक समस्या को लिख कर नहीं वर्णित किया जा सकता,** किन्तु तात्पर्य यही है कि जीवन में जैसी भी बाधा आ गई हो, व्यक्ति यदि बटुक भैरव प्रयोग सम्पन्न कर लेता है तो उसे उसी क्षण से आराम मिलना प्रारम्भ हो जाता है।

बटुक भैरव की साधना अन्य भैरव साधनाओं के समान ही विधि-विधान से युक्त है किन्तु अनुभव से यह भी देखने में आया है कि यदि साधक बटुक भैरव के शत अष्टोत्तर नामों का उच्चारण कर लेता है, तो उसे बिना किसी लम्बे विधि-विधान के भी अनुकूल फल मिलने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। ये विशिष्ट नाम इस प्रकार से संगुफित हैं कि बटुक भैरव के १०८ नामों का उच्चारण करने से और ऐसे विशिष्ट यंत्र पर जिसमें बटुक भैरव की समस्त १०८ शक्तियां आबद्ध हों नैवेद्य चढ़ाने से भगवान शिव के समान ही बटुक भैरव भी शीघ्र प्रसन्न होकर अपने भक्त साधक को तुरन्त अभय प्रदान कर देते हैं। संकटकारी परिस्थितियों में तो यह लघु प्रयोग अत्यधिक तीव्र प्रभाव देता देखा गया है।

बटुक भैरव साधना का दिवस यद्यपि मंगलवार है किन्तु आकस्मिक परिस्थितियों में किसी भी रात्रि में सम्पन्न की जा सकती है। **इस साधना में ताम्र पत्र पर अंकित एक विशिष्ट यंत्र की आवश्यकता पड़ती है जिसमें बटुक भैरव के समस्त १०८ स्वरूपों को पूर्णता से आबद्ध किया गया हो।** ऐसे यंत्र की यह भी विशेषता होती है कि वह आवरण पूजा की अनिवार्यता से मुक्त होता है, तथा इस पूजन में बलि आदि की भी आवश्यकता नहीं रहती।

क्रोध भैरव, उन्मत्त भैरव, कपाल भैरव, चण्ड भैरव, रुरु भैरव. . . इन सभी उग्र भैरव साधनाओं को केवल और केवल श्मशान में ही तो सम्पन्न कर सकते हैं. . . जबकि बटुक भैरव विशुद्ध व सौम्य रूप से सात्विक साधना है।

साधक गण पूर्ण शुद्ध सात्विक भाव से भगवान भैरव के पूर्ण सात्विक स्वरूप का स्मरण कर उनके आवाहन की प्रार्थना कर पूजन प्रारम्भ करें। लाल पुष्प यंत्र पर अर्पित कर सिंदूर का तिलक करें तथा निम्न ध्यान उच्चरित करें—

ध्यान -

उद्यद् - भास्कर - सन्निभं त्रिनयनं रक्तांग - राग स्रजम स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः। नील - ग्रीवमुदार - भूषण - शतं शीतांशु - चूडोज्ज्वल् बन्धूकारुण - वाससं भय - हरं देवं सदा भावये।।

इसके पश्चात मूल साधना क्रम प्रारम्भ होता है। पहले से किसी एक बड़े पात्र में घृत, मधु, शर्करा, गुड़ व काले तिल को मिश्रित करके रख लें तथा बटुक भैरव की १०८ शक्तियों के प्रतीक रूप में उनके विशेषणों का उच्चारण करते हुए प्रत्येक उच्चारण के साथ यह मिश्रण (नैवेद्य) यंत्र के सामने रखे किसी खुले मुंह के पात्र में डालते जाएं।

श्री बटुक भैरवनाथ के ये १०८ नाम इस प्रकार हैं–

१. भैरवः, २. भूतनाथः, ३. भूतात्मा, ४. भूतभावन, ५. क्षेत्रज्ञः, ६. क्षेत्रपाल, ७. क्षेत्रदः, ८. क्षत्रियः, ९. विराट्, १०. श्मशानवासी, ११. मांसाशी, १२. खर्पराशी-स्मरान्तकः, १३. रक्तपः, १४. सिद्धः, १५. सिद्धिदः १६. सिद्धिसेवितः, १७. कंकालः, १८. कालशमनः, १९. कलाकाष्ठतनु, २०. कविः, २१. त्रिनेत्री, २२. बहुनेत्रः, २३. पिंगललोचनः, २४. शूलपाणिः, २५. खड्गपाणि, २६. कंकाली, २७. धूम्रलोचनः, २८. अणभीरु, २९. भैरवीनाथः, ३०. भूतपः ३१. योगिनीपतिः, ३२. धनदः, ३३. धनहारी, ३४. धनवान, ३५. प्रतिभावान ३६. नागहारो, ३७. नागपाशः, ३८. व्योमकेशः, ३९. कपालभृत, ४०. कालः, ४१. कपालमाली, ४२. कमनीयः, ४३. कलानिधिः, ४४. त्रिलोचनः, ४५. ज्वलनेत्रः ४६. त्रिशिखा, ४७. त्रिलोकयः, ४८. त्रिनेत्रतनयः, ४९. डिम्बा, ५०. शान्तः ५१. शान्तजनप्रियः, ५२. बटुकः, ५३. बहुवेषः, ५४. खट्वांगवरधारकः, ५५. भूताध्यक्षः, ५६. पशुपतिः, ५७. भिक्षुकः, ५८. परिचारकः, ५९. धूर्तः, ६०. दिगम्बरः, ६१. शूरः, ६२. हरिणः, ६३. पांडुलोचनः, ६४. प्रशांतः ६५. शन्तिदः, ६६. शंकरः, ६७. प्रियबान्धवः, ६८. अष्टमूर्ति, ६९. निधीशः, ७०. ज्ञानचक्षुः, ७१, तपोमयः, ७२. अष्टाधारः, ७३. षडाधारः ७४. सर्पयुक्तः ७५ शिखिसखः ७६. भूधरः ७७. भूधराधिशः ७८. भूपतिः, ७९. भूधरात्मजः, ८०. कंकालधारी, ८१. मुण्डः, ८२. नागयज्ञोपवीतिकः, ८३. जृम्भणः, ८४. मोहनः, ८५. स्तम्भयः, ८६. मारणः, ८७. क्षोभणः, ८८. शुद्ध नीलांजनः, ८९. दैत्यः, ९०. दैत्यहा, ९१. मुण्डभूषितः, ९२. बलिभुक्, ९३. बलिभंगा, ९४. पनवीर, ९५. नाथः, ९६. पराक्रमः, ९७. सर्वापत्तारणः, ९८. दुर्गाः, ९९. दुष्टः-भूतनिवेदितः, १००. कामी, १०१. कलानिधि, १०२. कान्तः, १०३. कमनीयवशः, १०४. कृद्वशी, १०५. सर्वसिद्धिप्रदः, १०६. वैद्यः, १०७. प्रभुः, १०८. विष्णु।

इस पूजन क्रम की सम्पूर्णता हो जाने पर एक बार पुनः हाथ जोड़ कर भगवान बटुक को प्रणाम करें और प्रार्थना करें कि वे जीवन में सदैव सहायक तथा रक्षक बने रहें। चढ़े हुए नैवेद्य को किसी पवित्र स्थान पर अथवा किसी वृक्ष के मूल में डाल दें अथवा श्वान को खिला दें। यंत्र को पूजा स्थान में स्थापित कर दें।

तीव्र व उग्र साधनाओं में रुचि रखने वाले तथा भैरव साधना के लाभ प्राप्त करने के इच्छुक साधकों को चाहिए कि वे इन १०८ विशिष्ट नामों का उच्चारण नित्य प्रातः एक बार अवश्य कर लें जिससे वह पूरा दिन बाधा रहित व तनाव मुक्त बीत सके। विशेष अवसरों पर, मुकदमे में पेशी की तारीख पड़ने पर, व्यापारिक समझौतों के पूर्व भी इसी प्रयोग को दोहरा लेना किसी भी अचानक आने वाली बाधा से मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध होता ही है।

२४.०५.९४ नृसिंह जयन्ती

भूत-प्रेत बाधा निवारणार्थ नृसिंह प्रयोग

जिस प्रकार बटुक भैरव अथवा महाभैरव किसी भी रूप में उचित साधना के द्वारा साधक के समस्त विघ्न शांत करने में परम सहायक होते हैं उसी प्रकार भगवान विष्णु का नृसिंहावतार भी उनके अन्य अवतरणों की अपेक्षा तीव्रतम और विघ्न विनाशक माना गया है। अर्धरूप से सिंह एवं अर्ध रूप से मानव - इस अवतरण का अर्थ ही यही है कि व्यक्ति के अन्दर निहित सिंहत्व स्पष्ट हो सके, और तब भूत -प्रेत बाधा, ग्रह दोष, अनिष्ट भय, शत्रु संकट यों भाग जाता है जिस प्रकार सिंह गर्जन से हिरण भय से पीले पड़ मूर्छित हो जाते हैं। कैसी भी प्रबल भूत - प्रेत बाधा आदि क्यों न हो यदि साधक **काली हकीक माला** धारण कर निम्न नृसिंह मंत्र का २१ बार उच्चारण कर ले तो उसके ऐसे समस्त विघ्न शांत होते ही हैं।

मंत्र -

ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षःस्थल विदारणाय त्रिभुवनव्यापकाय भूत प्रेत पिशाच चंडाकिनी कुलोन्मूलनाय स्तम्भोद्भवाय समस्तदोषान हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ठः ठः एह्येहि रुद्र आज्ञापयामि स्वाहा।

यदि किसी दूसरे के लिए इस प्रयोग को करें तो एक काली हकीक माला पीड़ित व्यक्ति को भी धारण करा दें तथा उपरोक्त मंत्रोच्चार के साथ निरन्तर पीली सरसों का प्रहार पीड़ित व्यक्ति पर करते रहें। काली हकीक माला धारण करने कराने से यह योनियां पलट कर आक्रमण नहीं कर पाती।

१०८ दीक्षाएं जो अब सुलभ हैं

एक या दो दीक्षाएं ही जीवन की सम्पूर्णता का निर्माण नहीं कर सकती, यदि जीवन को बहुविध सम्पूर्ण व चैतन्य बनाना है तो १०८ दीक्षाओं का क्रम प्रयास करके प्राप्त करना ही चाहिए और जब सौभाग्य से पूज्यपाद गुरुदेव सदृश्य विराट व्यक्तित्व हमारे आपके मध्य उपस्थित है, हीरक जयन्ती का पावन पर्व है एवं उदार हस्त से दिया गया उनका वरदान है तब तो प्रयास करके इसे अर्जित करना ही जीवन का वास्तविक अर्थ है।

एक मां जब अपने शिशु को, अपने नवजात शिशु को देखती है और उसमें स्वयं को ही देखती हुई उसे स्पन्दित और धड़कता हुआ पाती है तो अपने हृदय की सारी ममता को स्नेह में बदल कर भावविभोर होकर उसका एक चुम्बन ले लेती है।

उस नवजात शिशु की आंखें जब ऐसे स्पर्श से खिल जाती है तो बस वही दीक्षा है, वही परिचय का प्रथम क्षण है। आगे के जीवन में तो संस्कार बनने की बात होती है। यही क्रिया गुरुदेव भी करते हैं जिस दिन, जिस पहले दिन एक व्यक्ति उनके पास पहुंचा नहीं कि नेत्रों के स्पर्श से वे उसके तन और मन दोनों को ही छू लेते हैं। उनका वह करुणा युक्त स्पर्श, वह प्रेम पूर्वक देखना ही व्यक्ति की दीक्षा होती है और उस स्पर्श से जब व्यक्ति को 'कुछ' अनुभव होता है तभी से एक परिचय और सम्बन्ध बनना प्रारम्भ हो जाता है।

दीक्षा के अर्थ सामान्य ढंग से बताए ही नहीं जा सकते। यह तो जन्म-जन्म की बिखरी कड़ियों को समेटने की क्रिया है और प्रथम मिलन के दिन से ही जो क्रम आरम्भ होता है वही विभिन्न दीक्षाओं के माध्यम से व्यक्ति को पूर्ण संस्कारित करने में समर्थ होता है।

इसी से यदि व्यक्ति यह समझे कि उसने सामान्य दीक्षा ले ली है और वह पूर्ण हो गया है तो यह पर्याप्त नहीं है, क्योंकि सामान्य दीक्षा या गुरु दीक्षा तो वह स्थिति है जब वह गुरु रूपी मां के सम्पर्क में आता है और आगे के उज्ज्वल जीवन की ओर चलता है। यह अत्यन्त दुरूह और कठिन प्रक्रिया है क्योंकि सामान्य दीक्षा के उपरान्त जब साधक आगे के मार्ग में गतिशील होता है तो जहां उसके पूर्व संस्कारों (जिन्हें कुसंस्कार कहना ही अधिक उचित होगा) को समाप्त करना होता है, वहीं नये संस्कारों का बीजारोपण भी करना होता है।

यह हम सभी का सौभाग्य है कि पूज्यपाद गुरुदेव ने इस **उत्सव वर्ष** में ऐसे सभी योग्य शिष्यों को १०८ दीक्षाएं देने का मानस बना लिया है जो तेजी से आगे बढ़कर कुछ करने की इच्छा रखते हों, जो चैतन्य हों और समाज में प्रतिष्ठा युक्त होकर जीने में विश्वास रखते हों।

२१ अप्रैल का पर्व जो कि पूज्यपाद गुरुदेव के जन्मोत्सव का विशिष्ट पर्व है, एक ऐसा दुर्लभ अवसर है जब से इन १०८ दीक्षाओं का क्रम प्रारम्भ होगा। प्राथमिक रूप में साधक एकदम से १०८ दीक्षाएं तो नहीं प्राप्त कर सकता किन्तु यदि वह इस अवसर से दीक्षाओं को प्राप्त करने का क्रम प्रारम्भ कर देता है तो आगे चलकर बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है। १०८ दीक्षाओं का विवरण व वर्णन एक अलग विषय है किन्तु हम उनमें से कुछ अति विशिष्ट दीक्षाओं का वर्णन पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

ये दीक्षाएं सर्वथा नवीन और जीवन में बहुत कुछ प्रदान करने में समर्थ हैं।

१. जीव चैतन्य दीक्षा - आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए गुरु को प्राणों में स्थापित करने के लिए, सिद्धाश्रम के दर्शन करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का जीव चैतन्य हो।

२. बन्ध मोक्ष दीक्षा - जब तक साधक सभी प्रकार के बन्धनों, ऋणों आदि से मुक्त न हो तब तक वह भला जीवन में किस प्रकार उन्नति की आशा कर सकता है?

३. भोग वरदा दीक्षा - मां भगवती का लक्ष्मी का सर्वाधिक वरदायक स्वरूप है भोगवरदा। जब साधक लक्ष्मी के पूर्ण जाज्वल्यमान स्वरूप का दर्शन करता हुआ जीवन के सभी भोग प्राप्त कर सके।

४. कामाक्षी दीक्षा - शक्ति का विस्फोट करने के लिए एवं शरीर को कामतत्व से आपूरित कर सौन्दर्यशाली स्वरूप पाने की आवश्यक दीक्षा।

५. स्फुलिंग दीक्षा - तंत्र साधनाओं में तीव्रता से आगे बढ़कर सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि साधक के अन्दर शक्ति का एक स्फुलिंग उपस्थित हो, और यह दीक्षा ऐसी ही विशिष्ट दीक्षा है।

६. पारदेश्वरी दीक्षा - रसेश्वरी दीक्षा से भी अधिक तीव्र एवं फलदायक दीक्षा जिसके माध्यम से साधक आगे चलकर न केवल पारद विज्ञान में वरन स्वर्ण विज्ञान में भी विशिष्टता प्राप्त कर सकता है।

७. महालक्ष्मी चैतन्य दीक्षा - पूर्व में प्रदान की गई महालक्ष्मी दीक्षा का ही विशिष्ट स्वरूप है ये महालक्ष्मी दीक्षा, जिसे इस २१ अप्रैल को पूज्यपाद गुरुदेव प्रदान करेंगे।

८. गुरु आत्म-एक्य दीक्षा - सही अर्थों में कहा जाय तो यह दीक्षा इस सम्पूर्ण पर्व का और एक सौ आठ दीक्षाओं का सार है क्योंकि जिसने गुरु को ही आत्मसंस्थापित कर लिया हो उसे अभाव भी किस बात का?

९. महाभैरव दीक्षा - समस्त तीव्र साधनाओं का आधार है यह दीक्षा, जिसको प्राप्त करने के बाद साधक निश्शंक रूप से वीर - वेताल, भूत - प्रेत जैसी कोई भी उग्र साधना सम्पन्न कर सकता है।

१०. कामरूपेण दीक्षा - कामदेव के समान सुन्दर, स्वस्थ निरोगी शरीर प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि साधक यह दीक्षा अवश्य प्राप्त करें जिससे वह सौन्दर्य और बल के क्षेत्र में अद्वितीय हो।

११. आयु आयुष्य दीक्षा - व्यक्ति का जीवन अल्प हो या पूर्ण जीवन होते हुए भी सदैव रोग ग्रस्त रहता हो तब तो उसे प्रयास करके आयुष्य दीक्षा प्राप्त करना अनिवार्य ही हो जाता है।

१२. ललिताम्बा दीक्षा - शक्ति साधनाओं में रूचि रखने वाले साधकों में मां भगवती जगदम्बा एवं दस महाविद्या के क्षेत्र में आगे बढ़ने की कामना रखने वाले शिष्यों के लिए यही दीक्षा सर्वाधिक अनुकूल एवं फलप्रद है।

१३. प्रबल लामा वशीकरण दीक्षा - इस दीक्षा को प्राप्त करने से साधक के भीतर ऐसा तेज और बल समा जाता है जिससे वह अपने सम्पर्क में आने वाले अपने इच्छित किसी भी व्यक्ति को सम्मोहित करने में सफल हो पाता है।

१४. सहस्रार जागरण दीक्षा - कुण्डलिनी जागरण दीक्षा के उपरान्त साधक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सहस्रार जागरण दीक्षा भी प्राप्त करें जिससे कुण्डलिनी जागरण क्रिया को पूर्णता मिल सके।

१५. ब्रह्माण्ड भेदन दीक्षा - इस ब्रह्माण्ड के अनेक ज्ञात और अज्ञात रहस्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक दीक्षा।

१६. सकल लोकगमन दीक्षा - जिसके माध्यम से साधक अपने प्राणों को सूक्ष्म कर किसी भी लोक में जाने में समर्थ हो सकता है।

१७. त्रिवर्ग दीक्षा - जिसके माध्यम से साधक अपने शरीर को अप्सरा या गन्धर्व वर्ग के अनुकूल ढालता हुआ उनके नृत्य, संगीत और साहचर्य का सुख - लाभ करने में समर्थ हो पाता है।

१८ परकाया प्रवेश दीक्षा - यह घटना आज के युग में भी सम्भव है यदि साधक इस प्रकार से दीक्षा के माध्यम से गतिशील हो।

१९. दूर - श्रवण दीक्षा - इस दीक्षा के माध्यम से साधक कालान्तर में ऐसी स्थिति प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है जिससे वह विश्व में कहीं भी हो रही कोई भी बात अपनी इच्छानुसार सुन सकता है।

२०. दूर - सम्प्रेषण दीक्षा - इस दीक्षा के माध्यम से साधक एक स्थान पर बैठे - बैठे ही अपनी आज्ञा सम्बन्धित व्यक्ति को प्रेषित करने में समर्थ हो सकता है।

२१. दूर - दृश्य दीक्षा - इस दीक्षा के माध्यम से साधक पूरे विश्व में हो रही कोई भी हलचल अपनी दिव्य दृष्टि के माध्यम से ज्यों का त्यों देख सकता है।

यह तो दीक्षाओं के अथाह समुद्र में से चुनकर कुछ एक उदाहरण है। साधक को चाहिए कि वह इन दीक्षाओं में से कम से कम पांच या छः दीक्षाएं तो अवश्य ही प्राप्त कर सम्पूर्ण रूप से १०८ दीक्षाओं को प्राप्त करने के लिए इस वर्ष विशेष में अग्रसर हो।

पूज्य गुरुदेव! क्यों हम पर माया का आवरण डाल रहे हैं?

किन्हीं सद्गुरु का एक योग्य शिष्य जो अपने शिष्यत्व के धर्म को पूर्ण करने में सदैव तत्पर रहता ही था और उनके आश्रम में सर्वश्रेष्ठ शिष्य था किन्तु इतने पर भी उनके आश्रम में सबसे अधिक मलिन उपेक्षित व अन्य शिष्यों द्वारा उपहास का पात्र भी बना रहता था।

एक अन्य गुरु ने उस आश्रम में आने पर उसके लक्षणों को देखा और एक ही दृष्टि में ताड़ लिया कि यह तो अनमोल हीरा है, किन्तु अन्य शिष्यों की अपेक्षा न तो इसके तन पर उज्जवल वस्त्र हैं, न भोजन में स्वादिष्ट पदार्थ, न सोने के लिए नर्म बिछौना!

– एकान्त होने पर वे पूछे बिना रह न सके. . .

". . . आप उसे ही क्यों प्रतिक्षण प्रताड़ना देते रहते हैं आचार्य! मेरी दृष्टि में तो वह शिष्यत्व के लक्षणों से पूर्णतयः युक्त है।"

"क्योंकि वह मेरा स्वप्न है, आने वाले युग की सम्पत्ति है!"

वास्तव में योग्य शिष्य तो आने वाली युग की सम्पत्ति होता है और सद्गुरु ऐसी ही सम्पत्ति का निर्माण करते रहते हैं, ऐसे ही सजीव ग्रंथ लिखते हैं और इसी से अपनी माया का विस्तार निरन्तर करते रहते हैं क्योंकि वह शिष्य उनका एक स्वप्न होता है, उनकी आंख में झिलमिलाता हुआ एक प्रकाश कण होता है, और वे उस पर कृपा नहीं बरसाते, उसे सहज मार्ग पर नहीं ले चलते, क्योंकि ऐसा करने से एक अनगढ़ हीरा चमक नहीं सकेगा और फिर उसका वह निर्मल प्रकाश नहीं बिखर सकेगा जो सद्गुरु की इच्छा होती है।

गुरु और माया निरन्तर अभिन्न रहते ही हैं, निरन्तर अपने चारों ओर माया का आवरण बनाए रखना और शिष्य को उसे बेधने न देना - यह सद्गुरु की ही क्षमता होती है, क्योंकि माया का आवरण बनाए रखना सहज कार्य नहीं होता, और जिसे हम उनकी माया कहते हैं, वह वास्तव में उनकी निरन्तर तपाते रहने की और गढ़ते रहने की एक प्रक्रिया होती है।

. . . किन्तु गुरु का दायित्व यहीं पर समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि वे जानते हैं कि जीवन की यात्रा तो कई मोड़ों से होकर गुजरती है और वे भांति - भांति से भ्रम तोड़ने का सतत प्रयास करते ही रहते हैं।

मौन व अनजान रहते हुए सद्गुरु अपने शिष्य के उन बिन्दुओं को पकड़ते रहते हैं, जो उसके जीवन के दुर्बल पक्ष होते हैं और वे निरन्तर उन बिन्दुओं पर चोट देते हुए उसे शुद्ध व निर्मल बनाने की क्रिया करते रहते हैं। **जो भी गुरु - साहचर्य में आया वह इस क्रिया से बच सकता ही नहीं।** अन्तर केवल इतना होता है कि अन्य जहां इस रहस्य को समझ नहीं पाते वहीं योग्य व चौकन्ना शिष्य गुरु - साहचर्य में प्रत्येक हलचल पर गहरी दृष्टि रखता है। एक - एक क्षण पर उसकी कड़ी पकड़ होती है और सतर्क रहते हुए वह अपना आकंलन करता रहता है, अपने आप को टटोलता रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ एक जिज्ञासु बन जाता है।

इस प्रकृति में व्यर्थ कुछ घटित होता ही नहीं। मन में उठने वाला कोई भी विचार, अपने समीप होने वाली प्रत्येक हलचल, सुगबुगाहट सभी का निश्चित अर्थ होता है और जब व्यक्ति इन्हें समझ नहीं पाता तो उसे **"ईश्वर की माया"** कह कर टाल देता है, क्योंकि विवेचन करने के लिए खुद को समझने के लिए एक निःस्वार्थ भाव चाहिए, एक ओर खड़े होकर वस्तुस्थिति को समझने का साहस होना चाहिए। अपने ओछेपन और घटियापन को समझने की हिम्मत होनी चाहिए, जिसकी क्षमता बहुत कम लोगों में ही होती है। **दूसरे पर आघात करना तो सरल है लेकिन अपने-आप को टटोल कर अपने-आप पर चोट देना अत्यन्त कठिन है।**

जिस परम शांति और आनन्द की बात हम कहते हैं, जिसकी खोज में आध्यात्मिकता का पथ पकड़ना चाहते हैं, उसकी यात्रा अपने अन्दर उतरने पर ही सम्भव होती है तथा इस यात्रा में अपने अन्दर छुपे प्रत्येक घटियापन का आभास हमें होता है। जो आत्म ज्ञान सम्भवतः पहली बार हमें होता है, वह झुलसाने की प्रक्रिया है।

व्यक्ति का बुद्धि पक्ष अत्यन्त सूक्ष्म तत्व है और वह व्यक्ति को निरन्तर एक आवरण में रख कर भ्रमित बनाए ही रखता है। व्यक्ति को सोचने का अवसर ही नहीं देता कि किसी घटना या प्रवृत्ति के पीछे विसंगति क्या है। निरन्तर आदर्श और भावना का ऐसा तानाबाना व्यक्ति के मन -मस्तिष्क पर बुन जाता है कि व्यक्ति एक घटाटोप में रहते हुए खुद को ही भ्रमित बनाए रखता है। **सद्गुरु इसी आवरण पर आघात करते हैं** और जब हमारी ही आंखों में छुपी वासनाएं निकल कर हमारे सामने आती हैं तो बुद्धि एक नया तर्क दे देती है कि ये सब उनकी माया है। निरन्तर झूठ बोलते हुए हम खुद से भी झूठ बोलना सीख गए हैं, जिसका नुकसान भी सबसे अधिक हमें ही हुआ है। निरन्तर आवरण में रहते हुए हम उस आनन्द की ओर बढ़ ही नहीं सके जो वास्तव में निस्पृहता का आनन्द है।

किन्तु गुरु का दायित्व यहीं पर समाप्त नहीं हो जाता। वे जानते हैं कि इस प्रकार से मेरा शिष्य कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाएगा और वे भांति - भांति से भ्रम तोड़ने का उपक्रम करते ही रहतें है क्योंकि वे जानते हैं कि ये जो मेरा शिष्य है वह अभी अबोध है, उसे संसार के ऊंच - नीच का पता ही नहीं है, एक प्रकार से यह कच्ची मिट्टी का बना है। इसी से वे ऐसी अनेक परिस्थितियों को संकेत रूप में अपने शिष्यों को दिखाते हैं, जो इस संसार में व्याप्त हैं और ऐसा करते हुए भी निरन्तर उसको सम्भाले रखते हैं। **जीवन की यात्रा तो सभी मोड़ों से होकर गुजरती है,** इनमें से किसी मोड़ पर रोग है, कहीं शत्रु है, कहीं धन की समस्या है, कहीं घर के झगड़े हैं और कहीं पथच्युत हो जाने का भय है। दृश्य रूप में अथवा किसी घटना के रूप में या मानसिक रूप से गुरुदेव निरन्तर चैतन्य करते हुए अपने शिष्य को विश्राम नहीं करने देते और निरन्तर गतिशील बनाए रखते हैं *क्योंकि यदि सामान्य शिष्य बने रहना है तो प्रारम्भ में वर्णित कथा के अनुसार सद्गुरु अपने पास अच्छे वस्त्र भी दे सकते हैं, स्वादिष्ट भोजन भी दे सकते हैं, गुदगुदे बिछौने भी दे सकते हैं लेकिन उससे वह शिष्य किसी के लिए छांव नहीं बन सकता, किसी के डगमगाते पैरों की लाठी नहीं बन सकता, किसी के झुलसते हृदय पर सुगन्धित बयार बनकर छा नहीं सकता,* और यदि ऐसा नहीं बन सकता तो उसमें गुरु का

गौरव ही समाप्त होता है। आने वाली पीढ़ी गुरु की कृपाओं का फल पाने से वंचित रह जाती है।

यह एक लम्बी और कष्टदायक प्रक्रिया है, जिसमें प्रतिक्षण गुरु को अपने शिष्य पर प्रहार करना पड़ता है और शिष्य को भी प्रहार सहना पड़ता है। बहुत ही कम, कहीं एक या दो शिष्य ऐसी कड़ी आग में से निकल पाते हैं और वे ही जान पाते हैं यह झुलसन और तपन, जो मुझे मेरे गुरु से मिल रही है, उसमें उनका कोई आनन्द नहीं है, वरन यह तो निर्माण की एक प्रक्रिया है, जैसे हम सुनार को सोने को तपाते हुए देखते हैं और जैसे हम फौज के एक सिपाही को कड़ी मेहनत में लगे हुए देखते हैं।

एक प्रमुख जनरल ने कहा था कि हम जितना अधिक पसीना अपने अभ्यास स्थल पर बहा देते हैं उतना ही कम खून युद्ध स्थल में बहाना पड़ता है और यही गुरु की माया का भी रहस्य है, उनके क्रिया कलापों का रहस्य है, जिसके द्वारा वे अपने शिष्य के जीवन को सहज व सुगम बनाते हैं। शिष्य जितना अधिक गुरु - सान्निध्य में ऐसा परिश्रम कर लेता है, सांसारिक कुचक्रों से उतना ही कम प्रभावित होता है।

गुरु द्वारा माया का आवरण बनाए रखना बेहद जरूरी भी है। यदि वे माया का आवरण बनाकर न रखे, लोगों को भ्रम में न डाले रखें तो उनके पास इतना अधिक कोलाहल व लोगों की भीड़ एकत्र हो जाएगी कि वे सकारात्मक कार्य कर ही नहीं पायेंगे। वास्तव में जो गुरु होते हैं वे अपने चारों ओर निरन्तर माया का आवरण बनाकर रखते हैं जिससे बुद्धिवादी, तर्क-कुतर्क करने वाले स्वार्थी व ओछे व्यक्ति उनसे दूर ही रहें। **केवल वही लोग उनके समीप आ पाएं जो वास्तव में जीवन को दांव पर लगाने की क्षमता रखते हों** क्योंकि शिष्य का अपना अस्तित्व रह ही नहीं जाता और जिसका अस्तित्व अंश मात्र भी बच जाए वह शिष्य बन ही नहीं सकता। शिष्य एक प्रकार से गुरु के पूरे व्यक्तित्व को पी जाता है, अपने रोम - रोम, चक्षु, जिह्वा, हृदय, चैतन्यता, प्रेम और तीव्रता सभी में उन्हीं का प्रतिरूप बन जाता है, जिससे जीवन का पुण्य कार्य हो सके, गुरु का गौरव - वर्धन हो सके।

यह कहना तो एक आत्म प्रवन्चना है कि गुरु हम पर माया का आवरण डाल रहे हैं। यह तो एक स्थिति मात्र है क्योंकि इस आवरण के पीछे गुरु का छलछलाता हुआ हृदय भी है, जो जितना माया का आवरण डाल रहा है, उतना ही व्यथित भी हो रहा है। शिष्य पूर्ण हो जाता है फिर भी गुरु का क्रम पूर्ण नहीं होता। वे निरन्तर उसे विरोधी परिस्थितियों में डालते ही रहते हैं, वे जानते हैं कि इस शिष्य में अब काम नहीं है, क्रोध नहीं है, लालच नहीं है, इसकी क्षुधाएं समाप्त हो गयी हैं, इसमें तृष्णा और मोह भी नहीं बचा है, फिर भी वे निरन्तर तपाते ही रहते हैं।

सुनार जब सोने को तपाता है तो वह जानता है कि यह सोना ही है, किन्तु उसे वह उस स्थिति तक ले जाकर तपाता है जब तक वह शुद्ध खरे चौबीस कैरेट का न हो जाए। जौहरी जानता है कि यह बेडौल सा पत्थर वास्तव में हीरा है, लेकिन तब तक उसको कड़ी घिसाई में डाले रखता है जब तक उसकी फलक से सतरंगी किरणें न फूटने लग जाए। क्योंकि ऐसे ही हीरे और स्वर्ण से मिल कर मुकुट बनते हैं। ☆

उनके शरीर से अष्ट गंध आती है!

कई ग्रंथों में वर्णन आया है कि **चैतन्य महाप्रभु, भगवान श्री कृष्ण, योगीश्वर सच्चिदानन्द जी महाराज** और **भगवान बुद्ध** के शरीर से भी बराबर अष्ट गन्ध प्रवाहित होती थी, इसलिए कृष्ण को गन्धन नाम से भी पुकारते हैं, बुद्ध के निवास स्थान को तो गन्ध कुटी ही कहा जाता था।

इससे सम्बन्धित एक और घटना मुझे स्मरण आ रही है। एक अवसर पर गुरुदेव **डॉ. श्रीमाली जी** के साथ हम कुछ शिष्य गुजरात स्थित प्रसिद्ध सोमनाथ के मन्दिर में भगवान शंकर के दर्शन करने के लिए गए थे और वहीं पास में एक ब्राह्मण के घर ठहर गए थे। उस समय गुरुदेव के साथ हम पांच - छः शिष्य थे।

शाम को भोजन आदि से निवृत्त होने पर ब्राह्मण और ब्राह्मणी हाथ जोड़ कर बैठ गए और बोले- **आप या तो साक्षात् भगवान शंकर हैं या कोई अत्यन्त उच्च कोटि के योगी हैं, यह मेरा सौभाग्य है कि आज मैं आपको आतिथ्य दे सका हूं।**

गुरुदेव ने माया का पर्दा डालते हुए बोले- तुम लोग गलतफहमी में हो, न तो मैं शंकर स्वरूप हूं और न कोई उच्चकोटि का योगी ही हूं, मैं तो सामान्य स्तर का सन्यासी हूं और घूमता - घामता इधर आ निकला हूं।

ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया- **आप अवश्य हमें भ्रम में डाल सकते हैं परन्तु आपके शरीर से निकलती हुई सुगन्ध से हमने अनुभव कर लिया है कि आप निश्चय ही अत्यधिक उच्च कोटि के योगी हैं या साक्षात् देवता हैं।** गुरुदेव उनके इस वाक्य से निरुत्तर हो गए।

मैंने ही नहीं अपितु अन्य कई योगियों और सन्यासियों ने भी चर्चा के दौरान बताया कि उन्होंने भी पूज्य श्रीमाली जी के शरीर से निकलती हुई एक गन्ध का अनुभव किया है और यह गन्ध पद्म गन्ध अथवा अष्ट गन्ध से मिलती - जुलती है। ☆

दीक्षा ही साधना क्षेत्र में सम्पूर्णता प्राप्ति का आधार है

क्योंकि साधना से जो प्राप्त करना चाहते हैं दीक्षा के द्वारा साधक अपने गुरुदेव से ७५ प्रतिशत तो तुरन्त प्राप्त कर लेता है शेष तो २५ प्रतिशत बचता है जो साधक तुरन्त मंत्र जप से प्राप्त कर लेता है यही तो गुरुदेव की अहैतुक कृपा है शिष्यों को!

दीक्षा के माध्यम से . . .

दीक्षा वास्तव में गुरु का एक अनुग्रह है अपने शिष्य पर, अनुकम्पा के विशेष क्षण हैं जब वे अपने तप की पूंजी को अपने स्पर्श, अपने चाक्षुषी स्पर्श अथवा आशीर्वचन के माध्यम से अपने शिष्य को प्रदान करते हैं। ऐसे ही अनेक पाठक और साधक पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा लाभ प्राप्त कर अपना जीवन संवार ही चुके हैं।

साधनाओं का मार्ग जहां क्रष्ट साध्य और जटिल है वहीं दीक्षा - मार्ग छोटा और सरल है। साधनाओं के मध्य जहां अनेक व्यवहारिक कठिनाइयां सामने आती है, पूर्व जन्म कृत दोष आदि बाधा बनते हैं, वहीं दीक्षा ऐसे कण्टकों को हटाते हुए साधक को उसका अभीष्ट प्रदान करने में अधिक अनुकूल रहती है।

कई ऐसे सौभाग्यशाली साधक हैं जो दीक्षाओं के माध्यम से कठिन साधनाओं और सिद्धियों को हस्तगत कर सके हैं। जिसके लिए उन्हें अन्यथा कड़ा परिश्रम करना पड़ता। इस अंक में हम ऐसे ही कुछ सफलता प्राप्त साधकों से पाठकों का परिचय करा रहे हैं –

अष्ट - लक्ष्मी दीक्षा

मैं आर्थिक रूप से पिछले कई वर्षों से कठिनाई अनुभव कर रहा था और आय प्राप्ति के साधन होते हुए भी उनमें बढ़ोतरी समाप्त हो गई थी मैं अपनी सभी कोशिशें करके परेशान और निराश हो गया था तभी दिल्ली आने पर जब मैंने पूज्य गुरुदेव से अपनी समस्या कही तो उन्होंने मुझे **अष्ट लक्ष्मी दीक्षा** लेने की आज्ञा दी। दीक्षा प्राप्ति के पन्द्रह दिन की बाद से ही मेरी स्थितियों में आश्चर्यजनक रूप से सुधार होने लगा और मैंने अनुभव किया कि पहले मेरा धन जिन गैर जरूरी कार्यों में खर्च हो जाता था वह अब बचने लगा है जिससे मेरी खुशहाली और सम्पन्नता फिर से लौट आयी है। मैं इसके लिए पूज्य गुरुदेव का दिल से शुक्रगुजार हूं।

सेलर ग्रीन नम्बर दार,
ऊगाला, अम्बाला

मनोकामना पूर्ति दीक्षा

मैंने सामान्य दीक्षा के बाद केवल पूज्य गुरुदेव द्वारा दी गई दीक्षाएं ही ली थी और अपनी और से किसी दीक्षा की प्रार्थना कभी नहीं की थी। एक दिन भेंट होने पर पूज्य गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी कि मैं दीक्षा के वस्त्र पहन कर दीक्षा स्थल पर बैठ जाऊं। मैं उनका अभिप्राय नहीं समझ सकी लेकिन आज्ञा का पालन किया। गुरुजी ने मुझे सभी दीक्षार्थियों के साथ -साथ दीक्षा दी। मैं यह भी नहीं जान सकी कि मुझे कौन सी दीक्षा दी है। जब मैंने बाद में पूछा तो अत्यन्त आग्रह के बाद उन्होंने बताया कि मुझे **मनोकामना पूर्ति दीक्षा** दी गई है। सचमुच मेरे मन में कुछ विशेष दीक्षाएं थी जिन्हें मैं स्पष्ट रूप से नहीं कह पा रही थी, लेकिन गुरुदेव ने उन्हें स्वयं समझ कर मुझे अनुकूल दीक्षा दे दी और आज मेरे सोचे कार्य अपने आप पूरे हो रहे हैं।

श्रीमती सीमा गोयल
नई दिल्ली

तनाव मुक्ति दीक्षा

पिछले काफी समय से मैं अपने व्यवसाय के कारण तनाव - ग्रस्त था। बम्बई में एक दिवसीय शिविर के आयोजन करते समय मुझे कई बार गुरुदेव के सम्पर्क में रहने का मौका मिला लेकिन हर बार यही सोचकर मैं चुप रह गया कि उनके सामने छोटी- मोटी व्यक्तिगत समस्या क्या रखूं, किन्तु पिछली बार जब मैंने एक दिवसीय शिविर का आयोजन किया तब पूज्य गुरुदेव आयोजन के पश्चात् मेरे घर पधारने पर अत्यन्त प्रसन्न थे और पूज्यनीया माता जी के साथ उपस्थित होने पर पूछ बैठे कि - 'तुम्हारी इच्छा क्या है।' मैं उस अवसर पर भी संकोच कर गया किन्तु पूज्यनीया माता जी उनके कान में कुछ कहा और वे मेरी ओर देख कर मात्र इतना ही बोले - **आज से तुझे व्यवसाय का तनाव नहीं रहेगा मैंने सम्बन्धित दीक्षा तुझको दे दी है**, और वास्तव में मेरे व्यवसाय में दिन - प्रतिदिन सुधार आता जा रहा है, जिससे मन में बना रहने वाला तनाव अपने आप ही समाप्त होते जा रहा है।
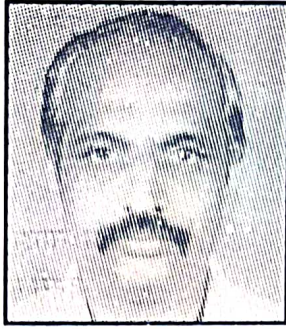
अनिल बघेरा
बम्बई

यक्षिणी दीक्षा

बी.ए. तक की पढ़ाई पूरी करने के बाद मेरी रूचि थी कि अपना व्यवसाय प्रारम्भ करूं लेकिन पूंजी की समस्या सामने आ रही थी। पारिवारिक रूप से मेरे पास इतनी पूंजी नहीं थी कि मैं अपने मन का व्यापार प्रारम्भ कर सकूं। पूज्य गुरुदेव से मैं पिछले तीन साल जुड़ा हूं और प्रारम्भ से ही मेरी यक्षिणी साधनाओं में रूचि ज्यादा रही है। मैंने यक्षिणी साधनाएं कीं लेकिन ऐसा लग रहा था कि कोई बाधा आड़े आ रही है। अभी कुछ दिन पहले जब गुरुजी ने दिल्ली में विशेष दीक्षाओं का क्रम प्रारम्भ किया और जब **यक्षिणी दीक्षा** भी देनी आरम्भ की तव मैंने भी उनसे प्रार्थना कि वे मुझे यक्षिणी दीक्षा दें। **यक्षिणी दीक्षा** प्राप्त करने के बाद जब मैंने साधना सम्पन्न की तव पहली वार में यक्षिणी का साक्षात्कार कर लिया। साथ ही मेरी धन की समस्या भी सुलझ गई है।

नरेन्द्र दत्ता
नई दिल्ली

सर्वसाधना सिद्धि दीक्षा

. . . प्रारम्भ में मैंने गुरु साधना की और इसके बाद अपनी इच्छा गुरु देव के सामने रखी। मैं खुद नहीं जानता था कि मुझे कौन सी दीक्षा लेनी उचित रहेगी। मैंने अपनी बात गुरुदेव के सामने रखी और मैं नहीं जानता कि इसके लिए मैं कौन सी दीक्षा लूं। उन्होंने स्वयं ही मुझे **सर्व साधना सिद्धि दीक्षा** प्रदान करने की बात कही। कहां तो मैं कुछ ही साधनाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए इच्छुक था और कहां उन्होंने मुझे ऐसी दीक्षा प्रदान कर दी। अब मेरी साधनाओं में आने वाली बाधाएं दिन - प्रतिदिन कम हो रही है और मैं कुछ साधनाओं में प्रारम्भिक सफलता अनुभव करने लगा हूं।
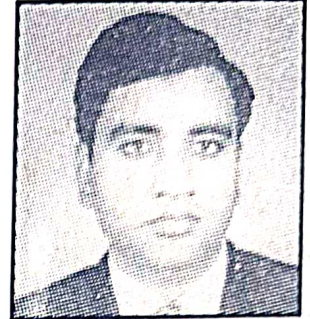
रमेश कुमार
नई दिल्ली

कुण्डलिनी जागरण दीक्षा

अनेक दीक्षाओं को प्राप्त कर लेने के बाद भी मुझे ऐसा लगता था कि कोई कमी रह गई है और मैं पूर्ण मानसिक शांति नहीं प्राप्त कर पा रहा था। मेरा ध्यान भी उस तरह से नहीं लग पा रहा था जिस तरह से मैं चाहता था साथ ही मेरे शरीर में और विशेष कर घुटनों में दर्द बना रहता था। जिससे आसन सिद्धि भी नहीं हो पा रही थी। मैंने इलाज भी किए और अपनी पूर्ण क्षमता से गुरु मंत्र जप किया। सवा लाख का एक अनुष्ठान होने के बाद मैंने फोन पर गुरुदेव से आज्ञा लेकर दिल्ली, में उनसे भेंट की। पूज्य गुरुदेव ने मुझे मिलने पर बताया कि वास्तव में मेरा अभी तक उचित समय नहीं आया था इसी कारणवश ये सब कठिनाइयां बनी हुई थी, किन्तु अब गुरु मंत्र जप से और उससे भी अधिक उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली **कुण्डलिनी जागरण दीक्षा** के द्वारा सभी स्थितियां सामान्य हो जाएंगी। यह बात अक्टूबर १६६३ की है।

दीक्षा के बाद मैं लगभग छः माह के भीतर ही भीतर अपने अन्दर हो रहे परिवर्तनों को भली - भांति को महसूस कर रहा हूं। मेरा ध्यान भी लगने लगा है और मानसिक शांति भी अनुभव हो रही है साथ ही शारीरिक कष्ट तो जड़ - मूल से समाप्त हो गए हैं।

कैलाशनाथ मिश्रा
फैजाबाद

'गुरु' गीत का नाम है
उत्सव का आधार है
इस प्रकार

आडियो कैसेट

गुरु मोरो जीवन प्रेम आधार
साधनाओं और सिद्धियों का आधार, गुरु आधार

गुरु गति पार लगावे
जब क्षण - क्षण गुरुदेव इस प्रकार साधना के रहस्य बता रहे हों

अकथ कहानी प्रीत की
शिष्य के जीवन की उत्सवमयता, आनन्द और पूर्णता

बिरहिन दियरा जोवे बाट
कैसे बना दिया जाए अपने अस्तित्व को
एक विरहणी, गुरु से एकाकार होने के लिए

काहि विधि करूं उपासना
जब गुरुदेव प्रत्यक्ष हों वाणी के माध्यम से
इस प्रकार, तब तो सब कुछ खोने लगता ही है

मैं खो गया तुम भी खो जाओ
क्योंकि खाली स्थान पर ही तो कुछ समाएगा!

प्रेम धार तलवार की
और इसमें भी आनन्द है. . .

गुरु हमारो गोत्र है :
साधक की पूर्णता, जब उसका अस्तित्व
गुरु के अस्तित्व से एक हो जाए हो

अडियो प्रति कैसेट ३०/-

गुरुदेव से साक्षात्

: वीडियो कैसेट :

पिय बिन बैरन काली रात
और ये दूरियां दूर होती हैं जब आपके घर में ऐसा श्रेष्ठ कैसेट हो

जीवन पग - पग साधना है
जिसके सूत्र भी बताएंगे पूज्यपाद गुरुदेव और राह भी सुझाएंगे वे ही

लक्ष्मी आबद्ध प्रयोग
एक श्रेष्ठ प्रयोग पूर्ण प्रामाणिकता के साथ अंकित

प्रति कैसेट - २००/-

प्राप्ति स्थान

मंत्र शक्ति केन्द्र, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी, जोधपुर (राज.),फोन-०२९१-३२२०९
गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली-३४, फोनः ०११-७१८२२४८, फेक्स-०११-७१८६७००

वास्तु देव पूजन

❋ यदि आपके घर में सुख शान्ति नहीं है?
❋ घर में हर समय कलह रहती है?
❋ पैसे का अभाव हर समय बना रहता है?
❋ आय से अधिक व्यय होता रहता है?

तो निश्चय ही कुछ विशेष बात अवश्य है, इसका निराकरण तो आवश्यक ही है,– 'वास्तु देव' की स्थापना, पूर्ण पूजा, नवग्रह स्थापना आवश्यक है, इसी महत्वपूर्ण विषय का सम्पूर्ण विवेचन––

परिश्रम तो अपनी बुद्धि, बल, ज्ञान, शक्ति के सामर्थ्य से हर कोई करने का प्रयास करता है, लेकिन फल कितनों को पूर्ण रूप से प्राप्त होता है? ऐसा निश्चित नहीं है। समाज का अंग होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति की एक अपनी अलग दुनिया होती है– जिसे उसका घर कहा जाता है, उसमें हर वस्तु, हर व्यक्ति, उससे जुड़ा होता है, अर्थात् उसकी पत्नी, उसकी सन्तान, उसके माता-पिता, उसके बहन-भाई, उसकी वस्तुएं, उसका कमरा इत्यादि - इत्यादि।

इस 'घर' नामक स्थान के लिए तो व्यक्ति इतनी अधिक भाग-दौड़ करता है, यदि घर नहीं हो तो व्यक्ति में कार्य करने की भावना ही नहीं आ सकती है। घर ही ऐसा स्थान है जो व्यक्ति को कार्य करने की प्रेरणा देता है, उसे संग्रह करने की प्रेरणा देता है, उसके हर प्रयत्न में यह इच्छा रहती है, कि उसका घर अर्थात् केवल पत्थरों का बना मकान ही नहीं अपितु जहां उसका अपना सब कुछ हो, उसमें सम्पूर्णता हो, वहां उसे सुख और शान्ति प्राप्त हो।

मैंने अपने जीवन में हजारों लोगों से मिलते हुए उनकी भावनाएं, इच्छाएं, उनकी कार्य-पद्धति को जाना है, उनमें से ज्यादातर अपनी घरेलू समस्याओं से ही ग्रस्त नजर आए, किसी को घर में शान्ति नहीं मिलती, कोई अपने पारिवारिक कलह से दुखी है, तो कोई अपनी पत्नी के कारण दुखी है। कोई अपने बच्चों के आज्ञाकारी न होने के कारण और कोई घर में लक्ष्मी अर्थात् पैसे ने होने के कारण दुखी है , अर्थात् केन्द्र बिन्दु तो घर ही है, जिसके लिए वह भाग-दौड़ करता है, यदि कोई सन्यास धारण कर ले, अपने घर को छोड़ दे, घर के प्राणियों से सम्पर्क त्याग दे तो उसके लिए सुख और दुःख एक समान हो जाते हैं, लेकिन क्या ऐसा सम्भव है? कदापि नहीं।

जीवन का यह चक्र तो चलाना ही पड़ेगा, लाखों में से एक-दो ही इस चक्र से अलग होकर एक अद्वितीय व्यक्ति बन सकते हैं लेकिन उन्होंने भी किसी न किसी घर से ही जन्म लिया होता है और उनकी यश वृद्धि से उनके घर की वृद्धि होती है।

व्यक्ति जब घर से दुखी हो जाता है तभी तो वह बाहर सुखों की तलाश में भटकता है, लेकिन क्या घर से बाहर सुख मिल सकता है? जब व्यक्ति अपने घर को अपने अनुकूल बना कर सुख प्राप्त नहीं कर सकता है, तो वह बाहर कैसे सुख प्राप्त करेगा? आखिर तो उसे लौट कर घर को आना ही पड़ता है।

घर कैसा हो

महाभारत में गीता का उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा कि– **''यही तुम्हारा स्थान है, तुम्हारा घर है, इसी के लिए तुम्हें संघर्ष करना पड़ेगा, इस हेतु**

यह विचार मत करो कि सामने कौन है, जीतोगे या हारोगे, तुम्हें अपना स्थान, अपना घर प्राप्त करना ही है और यही तुम्हारा कर्त्तव्य है, इसी में तुम्हें सुख की अनुभूति होगी।''

घर ही एक ऐसा स्थान है, जहां सुख प्राप्त हो सकता है। यदि आपका कोई विरोधी है, तो यह आवश्यक नहीं कि वह शारीरिक वार ही आप पर करे। तन्त्र ग्रंथों में ऐसे हजारों उल्लेख, साधनाएं वर्णन है जिसमें प्रयोग दिए गए हैं कि यदि किसी व्यक्ति का सम्पूर्ण विनाश करना हो तो उसके घर की शान्ति भंग कर दो, उसके घर पर ऐसे गणों का, शक्तियों का प्रहार कर दो कि उसे अपने घर में किसी प्रकार की शान्ति प्राप्त न हो, कलह का वातावरण मिले, भाई-भाई में द्वेष रहे, पति-पत्नी विपरीत विचारों के हों, बालक योग्य न हो, घर में हर समय अभाव बना रहे।

ऐसे स्थान पर रह कर कोई व्यक्ति चाहे वह बल, बुद्धि, चातुर्य से कितना ही परिपूर्ण हो, उन्नति नहीं कर सकता, वह एक कमाता है और सौ खर्चे उत्पन्न हो जाते हैं, अतः हर व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसका घर श्रेष्ठ हो, घर ऐसे स्वर्ग के समान हो जहां प्रसन्नता हो, प्रेम हो, स्नेह हो, शान्ति हो, लक्ष्मी का स्थायी वास हो, देवी-देवताओं का पूजन होता हो, अतिथि आ कर प्रसन्नता अनुभव करें, लक्ष्मी की निरन्तर बढ़ोत्तरी हो, श्रेष्ठ कार्य घर में सम्पन्न होते रहें, ऐसे ही घर स्वर्ग समान हैं।

पर ऐसा होता क्यों नहीं

हर घर में आदर्श स्थिति नहीं हो सकती, लेकिन एक संतुलन तो बना ही रह सकता है, घर में यदि दरिद्रता दुःख है तो धीरे-धीरे कम होने चाहिए, यदि ऐसा नहीं होता तो कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य है, ऐसा इसलिए होता है कि उस घर में कुछ ऐसे विपरीत ग्रहों का प्रभाव है, कुछ ऐसी आसुरी शक्तियों का प्रभाव है, जो घर की श्री वृद्धि का निरन्तर भक्षण करती रहती हैं, कुछ ऐसे तांत्रिक प्रभाव है, जो हर समय पीड़ा व्याधि पहुंचाते रहते हैं।

इसके निवारण के बिना उस घर की, उस परिवार की, उस वंश की सम्पूर्ण उन्नति सम्भव ही नहीं है, जो अपना घर नहीं सुधार सकता वह दूसरों का घर क्या सुधारेगा।

हर बात तर्क की कसौटी पर परखी नहीं जा सकती कुछ बातें केवल अनुभव के द्वारा ही जानी जा सकती है . . . श्मशान में व्यक्ति जाकर नहीं बैठ सकता क्यों?
घर दूषित होने पर भी ऐसे ही प्रभाव व्याप्त हो जाते हैं।

वायुमण्डल का प्रभाव

हर बात तर्क की कसौटी पर नहीं परखी जा सकती, कुछ बातें केवल अनुभव के द्वारा ही जानी जा सकती हैं, कुछ स्थानों पर व्यक्ति को विशेष मानसिक शान्ति प्राप्त होती है, और कुछ स्थानों पर एक भय लगता है, श्मशान में हर व्यक्ति जा कर नहीं बैठ सकता—क्यों? वहां प्रेत, वैताल, गण इत्यादि विचरण करते हैं और वे अपना दुष्प्रभाव डाल सकते हैं, जब कि मन्दिर में व्यक्ति अकेला ही सारी रात बैठ कर ध्यान कर सकता है, यही तो स्थान-स्थान का अन्तर है।

क्या आपने कभी विचार किया है कि आपका घर दूषित है या नहीं? आपके घर पर किस प्रकार के ग्रहों का प्रभाव है, खराब ग्रहों, प्रेत-प्रभाव, दुष्ट आत्माओं के निवास से घर में अशान्ति, दरिद्रता ही रहती है। आप जो निरन्तर साधना करते रहते हैं, गुरु-भक्ति करते हैं, उससे उनका प्रभाव क्षीण अवश्य हो जाता है, लेकिन जब तक घर का ही पूर्ण रूप से शुद्धिकरण न हो, श्रेष्ठ देवताओं का निवास न हो, तब तक कुछ भी उत्तम नहीं हो सकता।

वास्तु देवता की स्थापना

हर श्रेष्ठ कार्य को करने से पहले हम पूजन इत्यादि सम्पन्न करते हैं, इसी तरह सबसे आवश्यक है, कि जिस घर में रह रहे हैं, उसमें वास्तु देवता की स्थापना अवश्य करें, वास्तु देवता के सम्बन्ध में शास्त्रों में जो पौराणिक कथा मिलती है, उसके अनुसार भगवान शिव के पसीने से एक भयंकर आकृति वाला पुरुष उत्पन्न हुआ और उसने संहार करना प्रारम्भ किया, तब भगवान शंकर ने उसे शान्त कर उसके विशाल शरीर में सभी देवताओं का वास स्थिर कर दिया और यह वरदान दिया कि तुम मेरे शक्ति स्वरूप हो और हर घर में, हर मन्दिर में, हर भवन में, हर यज्ञ में, निर्माण और प्रवेश के समय तुम्हारा पूजन होगा, तुम जहां निवास करोगे वहां तुम्हारे साथ सभी ४५ देवता भी निवास करेंगे।

यह एक पौराणिक कथा है, लेकिन इसके वास्तविक महत्व को समझना आवश्यक है, वास्तुदेवता की स्थापना और पूजन के द्वारा हम अपने घर में उन शक्तियों को आह्वान कर रहे हैं — जो कि घर की रक्षा के साथ-साथ घर की उन्नति, शान्ति के लिए आवश्यक हैं, इन विशिष्ट सिद्ध देवताओं के प्रभाव से किसी भी प्रकार का तांत्रिक-प्रभाव, शत्रुओं द्वारा किए जाने पर निष्फल ही रहता है।

वास्तु मण्डल देवता

वास्तु मण्डल के विधान के अनुसार इसमें मुख्य रूप से ४५ देवता स्थित हैं, जो निम्नलिखित हैं—
१. शिखी, २. पर्जन्य, ३. जयन्त, ४. कुलिशायुध, ५. सूर्य, ६. सत्यल, ७. भृश, ८. आकाश, ९. वायु, १०. पूषा, ११. वितथ, १२. गृहक्षत, १३. यम, १४. गन्धर्व, १५. भृंगराज, १६. मृग, १७. पितृ, १८. दौवारिक, १९. सुग्रीव, २०. पुष्पदन्त, २१. वरुण, २२. असुर, २३. शेष, २४. पापहर, २५. रोगहर, २६. अहि, २७. मुख्य, २८. भल्लाट, २९. सोम, ३०. सर्प, ३१. अदिति, ३२. दिति, ३३. अप्, ३४. अपवत्स, ३५. अर्यमा, ३६. सावित्र, ३७. सविता, ३८. विवश्वान्, ३९. विबुधाधिप, ४०. जयन्त, ४१. मित्र, ४२. राजयक्ष्मा, ४३. रुद्र, ४४. पृथ्वीधर तथा ४५. ब्रह्मा।

वास्तु देव पूजा मुहूर्त

वास्तु देवता की पूजा किसी भी शुभ दिन प्रारम्भ की जा सकती है, यदि रवि पुष्य योग हो तो उस दिन पूजन का महत्व विशेष रूप से बढ़ जाता है।

वास्तु देव सम्पूर्ण पूजा विधान

पूजन के दिन प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व ही उठ कर पूरा घर साफ कर धो देना चाहिए, घर की सफाई शुद्ध रूप से की हुई होनी चाहिए जिस घर में अशुद्धि, कचरा, मकड़ी के जाले इत्यादि होते हैं— वहां कभी भी लक्ष्मी का वास नहीं हो सकता, अपने घर में पूजा स्थान पर अथवा बीच में आंगन में यह पूजा सम्पन्न कर सकते हैं।

इस पूजा में मुख्य रूप से मंत्र सिद्ध **''वास्तु देव यंत्र'' ''वास्तु देव मूर्ति'' तथा ''६४ वास्तु चक्र''** आवश्यक हैं।

अपने सामने एक बड़े श्वेत वस्त्र पर वास्तु मण्डल चक्र बनाएं, इस चक्र में ६४ चौकोर खाने चावलों से बनाते हुए प्रत्येक खाने में एक-एक वास्तु चक्र तथा बीचो-बीच वास्तु यन्त्र, तथा वास्तु मूर्ति स्थापित करें, इसके साथ एक कलश में शुद्ध जल भर कर ऊपर नारियल रखें और इस जल कलश को वास्तु यंत्र के सामने उसी खाने में स्थापित करें, वास्तु चक्र के बाहर पूर्व तथा पश्चिम दिशा में नौ-नौ रेखाएं खींचें। साधक का मुंह पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए। ये नौ-नौ रेखाएं ''रेखा देवियां'' हैं। पूर्व तथा पश्चिम की देवियों के नाम निम्न प्रकार से हैं—
१. लक्ष्मी, २. यशोवती, ३. कान्ता, ४. सुप्रिया, ५. विमला, ६. श्री सुभगा, ७. सुमति, ८. श्री, ९. इड़ा।

उत्तर तथा दक्षिण दिशा की देवियां निम्न हैं—
१. धन्या, २. प्राणा, ३. विशाला, ४. स्थिरा, ५. भद्रा, ६. स्वाहा, ७. नया, ८. निशा तथा ९. विरजा।

सर्वप्रथम वास्तु देव का आह्वान करें।

ध्यान मंत्र

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्
स्वावेशो अनमीवो भवानः।
यत् त्वमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो
भव द्वि पदे शं चतुष्पदे।।

वास्तु देवता पर सिंन्दूर, पुष्प-माला तथा जल अर्पित करें, और अपने घर में स्थायी रूप से निवास करने का आह्वान करें।

इसके पश्चात् 'रेखा देवियों' का पूजन करते हुए प्रत्येक रेखा देवी एवं वास्तु चक्र पर चावल कुंकुम चढ़ाएं तथा नमस्कार करें—

सर्वप्रथम पूर्व तथा पश्चिम दिशा में स्थापित देवियों का पूजन करें—

ॐ लक्ष्मी नमः, ॐ यशोवती नमः, ॐ कान्ता नमः, ॐ सुप्रिया नमः, ॐ विमला नमः, ॐ श्री सुभगा नमः, ॐ सुमति नमः, ॐ श्री नमः, ॐ इड़ा नमः।

इसके बाद उत्तर तथा दक्षिण दिशा में स्थापित रेखा देवियों का पूजन सम्पन्न करें—

ॐ धान्या नमः, ॐ प्राणा नमः, ॐ विशाला नमः, ॐ स्थिरा नमः, ॐ भद्रा नमः, ॐ स्वाहा नमः, ॐ नया नमः, ॐ निशा नमः, ॐ विजा नमः।

प्रत्येक बार बीच में स्थित जल भरे कलश से एक पीपल के पत्ते द्वारा जल लेते हुए प्रत्येक देवी पर जल छिड़कें।

इसके पश्चात् वास्तु चक्र में स्थित ४५ देवताओं का पूजन करें, इनका पूजन भी ऊपर दी गई विधि के अनुसार ही सम्पन्न किया जाएगा। जब सभी ४५ देवताओं का पूजन सम्पन्न हो जाए तो अपने हाथ में चावल लेकर उसमें थोड़ा सिन्दूर मिला कर चारों दिशाओं में तथा आकाश की ओर दाएं हाथ से वास्तु देव का ध्यान करते हुए फेंकें, पूजन के समय वास्तु देवता के समक्ष दूध से बना नैवेद्य अवश्य रखना चाहिए, इसके पश्चात् **मूंगा माला** से वास्तु देवता का ११ माला मंत्र जप अवश्य सम्पन्न करना चाहिए।

वास्तु देवता मंत्र

ॐ नमो नारायणाय वास्तु रूपाय
भूर्भूवस्व पतये भूपतित्व मे देहि
ददापय स्वाहा।।

६४ वास्तु चक्रों के पूजन के पश्चात् दूसरे दिन श्रेष्ठ जल धारा में समर्पित कर दें।

इस दिन पूजन के पश्चात् ब्राह्मण भोजन करा कर स्वयं सायंकाल भोजन करना चाहिए। सम्पूर्ण पूजन के समय मन में प्रसन्नता, कर्त्तव्य भावना, श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए। श्रद्धा के बिना साधना में सफलता प्राप्त नहीं होती है।

इस साधना के बारे में, इस पूजन के बारे में इतना ही लिखना काफी है कि यदि घर पर किसी भी प्रकार का तांत्रिक प्रभाव किया हो, अथवा घर में निरन्तर बीमारी अशान्ति, बाधा, अभाव रहता हो-तो वास्तु देवता स्थापना पूजा से सम्पूर्ण शान्ति एवं सिद्धि प्राप्त होती है।

सिद्धिप्रद चातुर्या साधना

आत्मविश्वास एवं व्यक्तित्व निर्माण हेतु

जिस प्रकार अंधता को मृत्यु कहा गया है उसी प्रकार अज्ञान को भी मृत्यु तुल्य माना गया है। मूढ़ता को जीवन का अभिशाप कहा गया है क्योंकि ज्ञान और प्रखरता भी जीवन का एक प्रकाश ही है जिसके अभाव में संसार का दुर्गम पथ पार करना कठिन होता है और जिस की न्यूनता में पग - पग पर ठोकरें लगने की सम्भावनाएं अधिक प्रबल रहती हैं।

ज्ञान का पथ अत्यन्त कठिन है, तलवार की धार पर चलने के समान है और पग - पग पर इसमें गिर जाने का भय है, अहंकार में डूबकर समाप्त हो जाने का भय है किन्तु बिना ज्ञान के जीवन का आनन्द और तृप्ति भी तो नहीं है। **शास्त्रों का कथन है कि जो सामान्य और मूढ़ व्यक्ति होते हैं वे दूसरे व्यक्तियों के क्रिया कलापों की चर्चा करके, परनिन्दा और प्रपंच करके अपना मनोरंजन करते हैं,** मध्यम कोटि के व्यक्ति जीवन की विभिन्न स्थितियों की चर्चा करके सन्तुष्ट हो जाते हैं, अत्यन्त उच्चकोटि के व्यक्तित्व अपने जीवन का रस काव्य व संगीत की तृप्ति से लेते हैं क्योंकि इन्हीं क्षणों में जिस अमृत - कण का आनन्द मिलता है, जिस दिव्यता का आभास होता है, वही इस मानव जीवन का सही अर्थ है और ऐसी तृप्ति है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

''ज्ञान'' का अर्थ पुस्तकीय या ज्ञान विश्वविद्यालय द्वारा प्राप्त किसी डिग्री से नहीं आंका जा सकता। ज्ञान सही अर्थों में जीवन की वह स्थिति होती है जो व्यक्ति की चेतना से प्रकट होता है और जो जीवन के विविध अनुभवों से परिपक्व होती है। ''ज्ञान'' शब्द का अर्थ यदि स्पष्टता से समझना चाहें तो यह अंग्रेजी भाषा के शब्द **''इन्टेलीजेन्ट''** के अधिक समीप है। बुद्धिमान व्यक्ति के लिए अंग्रेजी भाषा का ही एक अन्य शब्द **''वाइज''** भी प्रयुक्त होता है किन्तु ज्ञानवान व्यक्ति वही कहा जा सकता है जो इन्टेलीजेंट हो अर्थात् जो प्रज्ञावान हो, सूक्ष्म बुद्धि हो, संकेतों को समझने की चेष्टा करने वाला हो तथा प्रत्युत्पन्नमति हो (अर्थात् तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता से युक्त हो) ऐसा ही व्यक्ति फिर जीवन में तेजी से अपना विशिष्ट स्थान बनाने की क्षमता रखता है क्योंकि यह गुण आज के युग में तो अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

प्रायः हमें अभिभावकों के पत्र मिलते रहते हैं कि उनकी सन्तान सभी प्रकार से योग्य होते हुए भी पढ़ाई में पिछड़ी रहती है अथवा पढ़ने से मन चुराती है, साथ ही हमें ऐसे विद्यार्थियों के भी पत्र मिलते हैं जो दसवीं अथवा प्लस टू के छात्र हैं और सारी मेहनत के बाद भी तो पढ़ा हुआ याद नहीं रख पाते या परीक्षा में उसे भली - भांति

विद्यार्थियों के लिए विशेष अनुकूल साधना, जिन्हें स्मरण शक्ति की कमी के कारण अपने अध्ययन में बार-बार बाधाओं का सामना करना पड़ता हो।

प्रस्तुत नहीं कर पाते, जिसका परिणाम यह होता है कि वे अच्छे अंक पाने से वंचित रह जाते हैं। वे समझ नहीं पाते कि उन्होंने मेहनत तो पूरी की, रात - रात भर जग कर अध्ययन किया किन्तु लाभ क्यों नहीं प्राप्त कर सके। इसका सीधा सा उत्तर है कि स्मरण शक्ति का अभाव, अर्थात् वह चेतना जाग्रत नहीं है जो मस्तिष्क में किसी वस्तु को संचित रखती है और सरल शब्दों में कहें तो वह चेतना जो ग्रहण करने की शक्ति है, न्यून है। क्योंकि जब तक ग्रहण करने की क्षमता का ही विकास नहीं होगा तब तक संचय की क्षमता भी अर्धविकसित ही रहेगी। व्यक्ति की स्मरण शक्ति ही उसके सारे जीवन की सफलता का आधार होती है।

स्मरण शक्ति की प्रबलता या पुष्टि जिस तरह छात्रों के जीवन में एक आवश्यक स्थिति है उसी प्रकार किसी भी क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति के लिए भी आवश्यक है। छात्रों के लिए यह विशेष महत्वपूर्ण इस कारणवश होती है कि उनके समक्ष पूरा जीवन और कैरियर होता है। वे जीवन के उस मोड़ पर खड़े होते हैं जहां उन्हें जीवन का एक प्रकार से नवनिर्माण करना होता है तथा स्वालम्बी बनकर अपने अभिभावकों का बोझ हल्का करना होता है। वर्तमान युवा पीढ़ी इस हेतु समय से पूर्व ही सचेत होकर अपना भविष्य सुनिश्चित करने की चेष्टा में संलग्न है ही।

साधनात्मक ग्रंथों में, शास्त्रों में "ज्ञान" का जिस प्रकार से अर्थ किया गया है, तात्पर्य बताया गया है उसके अनुसार जिस प्रकार से व्यक्ति को "स्व" का बोध हो जाए और वह अपने मूल स्वरूप का, विराट स्वरूप का, आनन्दमय स्वरूप का बोध कर मुक्ति लाभ प्राप्त कर सके वही 'ज्ञान' है, किन्तु "ज्ञान" का तात्पर्य इतना सीमित भी नहीं हो सकता। वह केवल और केवल आध्यात्मिक पक्ष से बंधा हुआ नहीं हो सकता।

जो चेतना व्यक्ति को मुक्ति लाभ जैसा बड़ा उद्देश्य प्राप्त करा सकती है वह जीवन के प्रत्येक पक्ष में क्रियाशील क्यों नहीं हो सकती? अन्तर केवल इतना है कि व्यक्ति इस चेतना को क्रियाशील करने का तरीका प्राप्त कर सके, उसका अपने इच्छित ढंग से उपयोग कर सके और यह तरीका प्राप्त होता है साधनात्मक प्रक्रियाओं द्वारा।

किसी भी चेतना को बुद्धि से समझा ही नहीं जा सकता। साधनाओं द्वारा चेतना जाग्रत होकर फिर वही व्यक्ति को किसी भी विषय का ज्ञान देती है।

ज्ञान - लाभ या व्यवहारिक अर्थ में स्मरण शक्ति और मस्तिष्क के ग्रहण करने की शक्ति का विकास करने की एक प्रामाणिक साधना इन पन्नों के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही है जो मूलतः साबर साधना है अतः सरल और शीघ्र लाभकारी भी है। यह विशेष साधना नाथ साबर पंथ की न होकर जैन साबर तंत्र की है। **जैन साधकों की प्रखरता व आध्यात्मिक चेतना विख्यात रही है।** परवर्ती काल के जैन साधकों ने अपने पंथ के नितांत आध्यात्मिक स्वरूप में परिवर्तन करके उसमें जो व्यवहारिक रूप से साधनात्मक ज्ञान जोड़ा उसी का परिणाम है कि जैन वर्ग एक विकासशील व अत्यधिक सम्पन्न वर्ग बन सका। जिस प्रकार से जैन मत में महालक्ष्मी के मूल स्वरूप में तंत्रमयता का समावेश कर पद्मावती साधना विकसित की गई उसी प्रकार महासरस्वती साधना में भी किंचित परिवर्तन कर एवं विशिष्ट मंत्र जोड़ कर चातुर्या साधना विकसित की गई। यह साधना बुद्धि की प्रखरता एवं प्रत्युत्पन्नमति क्षमता के विकास की सर्वश्रेष्ठ साधना मानी गयी है।

जैन साधनाओं में (एवं विशेषकर जैन साबर साधनाओं में) सोमवार का विशेष महत्व होता है तथा सात्विक साधनाओं हेतु गुरुवार का प्रयोग किया जाता है। **संयोग से इस वर्ष ज्ञान जयन्ती एवं गुरुवार का संयोग २६.०५.९४ को हो रहा है जिससे यह दिवस इस विशेष साधना को प्रारम्भ करने के लिए अत्यन्त सिद्ध मुहूर्त बन गया है।**

इस साधना में ऐसे श्वेत वस्त्र को धारण किया जाना आवश्यक है जो बिना सिला हो अतः एक श्वेत धोती लाकर उसे ही पहन कर ओढ़ भी लेना चाहिए और मन में अत्यन्त शुद्ध व पवित्र भाव लेकर संकल्प युक्त होते हुए साधना का प्रारम्भ करना चाहिए।

यह मूलतः वाक्-देवी साधना ही है किन्तु विशिष्ट एवं फलप्रद स्वरूप में। इस साधना की विधि अत्यन्त सरल है, उत्तर मुख होकर अपने सामने एक सफेद कपड़े पर चावलों की एक ढेरी बनाते हुए इस पर शुद्ध घी का दीपक स्थापित करें तथा उसकी लौ में त्राटक करते हुए **स्फटिक मणि माला** से (जो जैन साबर मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित हो) निम्न मंत्र का १०८ बार उच्चारण करें –

चातुर्या मंत्र -

ॐ ऐं श्रीं ऐं चातुर्यै नमः

साधक अपनी रुचि के अनुसार अधिक से अधिक पांच माला तक मंत्र जप कर सकता है। माला को नित्य की साधना के बाद सफेद कपड़े से ढांक कर शुद्धता पूर्वक रख देना चाहिए। इस साधना की अवधि में प्रत्येक ढंग की तामसिक एवं अपवित्रता का त्याग कर देना आवश्यक है।

यह एक निरन्तर की जाने वाली साधना है तथा साधक अपनी वाणी में अपने वाले परिवर्तन से इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है जिससे उसके आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है।

वाक् को भारतीय चिन्तन में व्यक्तित्व और आध्यात्मिक सफलता का आधार माना गया है। स्मरण शक्ति और मस्तिष्क के ग्रहण करने की शक्ति में वृद्धि करने की तो एक सफल साधना है ही।

प्रेम न खेती उपजै

प्रेम अपने ही अस्तित्व की खोज है, अपने - आपको ही पहिचानने का प्रयास है। अस्थि चर्म की देह से ऊपर उठकर उस स्थिति तक की यात्रा है जिसमें सुगन्ध और रंगों का निर्झर है, एक पुष्प की यात्रा है प्रेम, सुगन्ध का अस्तित्व खोज लेने की छटपटाहट ही प्रेम है।

जब सूखी और गुमसुम डालियों पर कोई हलचल होती है, रस का संचार होता है तभी एक पुष्प का जन्म होता है और वह पुष्प अपना अर्थ, अपनी सुगन्ध का रहस्य खोजे बिना रह नहीं पाता क्योंकि ऐसा करना ही उसके जीवन की सार्थकता जो होती है।

सुगन्ध के साक्षी भूत बनने से लेकर सुगन्ध का रहस्य प्राप्त कर लेने तक की यात्रा सामान्य यात्रा नहीं होती। अपने अस्तित्व को तिल-तिल कर समाप्त कर एक - एक पुखंड़ी को कुम्हला कर मूक रह उस डाली का साथ छोड़ देना होता है, जिससे जन्म लिया किन्तु पुष्प की यात्रा यहीं पर समाप्त नहीं होती।

पुष्प तो एक डाली का ही था और जो कुछ उसके पीछे रह गया जो कुछ उसने अपनी खोज में अपना समाप्त कर दिया, जो उसके अस्तित्व के बाद साकर रूप ले सका बच गया, वे होते हैं नन्हें - नन्हें सैकड़ों बीज।

– और नेह की हवा इन बीजों को अपने साथ उड़ा कर ले जा रही है, दूर- दूर बहुत दूर . . . और पास - नजदीक!

क्योंकि पुष्प तो एक डाली का ही था बीज सारी धरा के लिए हैं।

और तब पुष्प की सूखी पंखुड़ियां जमीन पर खोते - खोते देख लेती हैं कि सुगन्ध का सारा रहस्य तो उसी में छिपा था।

नेह की, आशा की, टकटकी लगाकर देखती दृष्टियां पवन के झोंके बना कर डाल के पास आती है और बीजों को अपने पास तक हवा में तैरा कर बुला ले जाती है. . .

क्योंकि छांव की चाह भूमि के किस टुकड़े को नहीं है?

दूर - दूर बहुत दूर . . . और पास- नजदीक. . . जहां भी पुष्प का अंश गिरा, वहीं एक वृक्ष बना, दूरी कहां? लेकिन डाल से बिछोह सहना पड़ा।

यही प्रेम की सही पहचान है एक बीज और दूसरा बीज पास - पास गिरे और ऐसे कई बीज उग कर बाहों में बाहें डालकर एक उपवन बना दें जिसके नीचे ध्यान के, धारणा के, समाधि के आयाम विस्तृत हों।

प्रत्येक शिष्य गुरु रूपी डाल से निकला एक बीज है और हर बीज़ जानता है कि वह दूसरे बीज के समान ही है।

यही पहचान प्रेम है।

पूज्य गुरुदेव के संग : कुछ क्षण

आज जब हम पूज्यपाद की हीरक जयन्ती का वर्ष मना रहे हैं तब आवश्यक हो जाता है कि साधकों के अनुभवों के प्रकाश में भी उनके व्यक्तित्व की विविध और बहुआयामी झलकी प्राप्त करें।

चाहे गृहस्थ शिष्य हो अथवा सन्यस्त शिष्य, उनकी याद बड़ी कसक के साथ करता ही रहता है और जिन क्षणों का वह साक्षीभूत बना उसकी स्मृति सदैव उसको चैतन्य और गुरु के प्रति अश्रुपूरित रखती ही है।

प्रस्तुत हैं कुछ प्रतिनिधित्व करती घटनाएं –

साक्षात् शिव स्वरूप ही तो

मनाली से चालीस किलोमीटर दूर अव्यय पहाड़ प्रसिद्ध है। एक बार हम सब उसी पहाड़ की चोटी पर बैठे हुए थे **स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी** दैनिक पूजा पाठ सम्पन्न कर गुफा से बाहर निकले ही थे। हम सबको देखकर उन्होंने आशीर्वचन कहा तभी उनकी दृष्टि एक कापालिक पर पड़ी जो कि सब हम शिष्यों के पीछे एक कोने में बैठा हुआ था, ललाट पर सिन्दूर का बड़ा सा तिलक, बलिष्ठ शरीर, ताम्बे के जैसा रंग, रक्तिम आंखें और सुदृढ़ स्कन्ध।

स्वामी जी ने पूछा - **यह कौन है?** फिर उसकी ओर मुखातिब होकर बोले, **कापालिक हो?**

उसने खड़े होकर हाथ जोड़े और बोला—**कापालिक ही नहीं भैरव हूं साक्षात् भैरव . . .।**

स्वामी जी हंस दिए बोले— **भैरव तो कुछ और होता है, तू तो भीख मांगने वाला और नरमुण्ड खाने वाला कापालिक ही हो सकता है।**

इतना सुनते ही उसकी त्यौरियां चढ़ गई, यह पहली घटना होगी कि किसी ने उसके सामने इतनी कठोर बात कह दी होगी, वह उठ खड़ा हुआ उसकी आंखों से रक्त की बूंदें टप्-टप् टपक पड़ी।

स्वामी जी ने कहा, **उत्तेजित होने की जरूरत नहीं तू जो कुछ कर रहा है, मैं समझ रहा हूं, और वर्षों पूर्व मैंने यह सब कुछ करके छोड़ दिया है, कापालिक को दर्प करना ठीक नहीं, कापालिक को तो क्षमा सीखनी चाहिए और अपने जीवन में भगवान रुद्र के अवतार भैरव को हृदयस्थ करना चाहिए।**

हमने अनुभव किया कि कापालिक कुछ वामचारी क्रिया सम्पन्न कर रहा है, और इसलिए अपने नेत्रों से रक्त की बूंदें प्रवहित कर रहा है, पर इससे स्वामी जी बिल्कुल विचलित नहीं हुए, लगभग दस मिनट बीत गए, सर्वत्र और उस पहाड़ी पर तो बिल्कुल निस्तब्धता थी, सुई भी गिरती तो आवाज सुनाई दे सकती थी, तभी स्वामी जी ने मौन भंग किया बोले— **कापालिक, ऐसी छोटी और मामूली मारण क्रियाएं मेरे ऊपर लागू नहीं होगी, बेकार अपना समय बरबाद कर रहा है, तू कहे तो मैं तेरे आराध्य काल भैरव को यहीं प्रकट कर सकता हूं।**

कापालिक ने एक क्षण के लिए गुरुदेव को देखा और अनुभव किया कि वास्तव में ही उसकी मारण क्रियाओं का कोई प्रभाव गुरुदेव पर नहीं पड़ रहा है, यही नहीं अपितु वह सामने खड़ा व्यक्तित्व तो कह रहा है कि यदि कहो तो आराध्य काल भैरव को प्रकट किया जाए।

कापालिक ने कहा - **आप मुझे मेरे इष्ट काल भैरव के दर्शन करा देंगे?**

अवश्य! यदि तू चाहेगा तो अवश्य दर्शन होंगे।

कापालिक घुटनों के बल झुक गया, जैसे कि उसने पूज्य गुरुदेव की अभ्यर्थना की हो, तभी **स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी** के मुंह से भैरव ध्यान स्वतः उच्चरित हो गया -

फुं फुं फुल्लारशब्दो वसति फणिपतिर्जायते यस्य कण्ठे।
डिं डिं डिन्नातिडिन्नं कलयति डमरू यस्य पाणौ प्रकम्पम्।
तक् तक् तन्दातितन्दान् धिगिति धिगिति गीर्गीयते व्योमवाग्मिः
कल्पान्ते ताण्डवीय सकलभयहरो भैरवो नः स पायात्।।

और तभी भीमकाय तेजपुंज पुरुषाकृति साकार हो गई, ऐसा लग रहा था कि जैसे स्वयं काल ही पुरुष आकृति में साकार हो गया हो जिसके सारे शरीर से तेजस्वी किरणें निकल रही थी, वायु का वेग बढ़ गया और उस पहाड़ पर कई पेड़ जड़ सहित उखड़ कर गिरने लगे, सूर्य का ताप जरूरत से ज्यादा बढ़ गया। हम सब उस व्यक्तित्व के तेजस्-ताप से झुलसने लगे।

यह स्थिति लगभग एक या डेढ़ मिनट रही होगी, परन्तु यह एक मिनट ही अपने-आप में एक वर्ष के समान अनुभव हुआ। **हम सब काल भैरव को साक्षात् अपने सामने देख रहे थे, इतना भयंकर तेजस्वी और अद्वितीय स्वरूप पहली बार ही हमारे सामने उपस्थित था,** वास्तव में ही पुरुषाकृति भयंकर दिव्य और अद्वितीय थी।

कुछ ही क्षणों बाद वह पुरुषाकृति शून्य में विलीन हो गई, पर्वत का थरथराना स्वतः रुक गया और वायु पुनः धीरे-धीरे बहने लगी, परन्तु सामने ही पन्द्रह- बीस जड़ों सहित उखड़े पेड़ उस एक क्षण के गवाह थे, पार्श्व में झुलसी हुई घास उस व्यक्तित्व की दैदीप्यता की साक्षीभूत थी। ऐसा लगा कि हम भयंकर अग्नि कुण्ड में से निकल कर शीतल स्थान पर आ गए हों।

कापालिक दण्ड की तरह पूज्य गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा, उसकी आंखों से अश्रुधार प्रवहित होने लगी। उसके तो जीवन के सौभाग्य का उदय हो गया था, कि अपने इष्ट के साक्षात् दर्शन पूज्य गुरुदेव की कृपा से हो गए थे और उसकी वजह से से हमने भी शास्त्रों में वर्णित उस तेजपुंज कालराज भैरव के दर्शन किए जो कि अपने-आप में तेजस्विता के पुंज हैं।

उस कापालिक का रोमांचित शरीर, विगलित कंठ और अश्रुपूरित आंखें यही कह रही थी, कि यह सन्यासी सही अर्थों में शंकर का स्वरूप है, क्योंकि भगवान शिव के अलावा और किसी में इतनी क्षमता नहीं होती कि वह काल भैरव को प्रत्यक्ष कर सके, साकार कर सके। यही कापालिक आगे चलकर स्वामी जी का श्रेष्ठ शिष्य बना। आज भी कापालिक साधना में उसका नाम **छिन्नमस्तक कपाली** के रूप में आदर के साथ लिया जाता हैं।

– स्वामी प्रज्ञानन्द
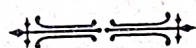
और दण्ड यमुनोत्री में फेंक दिया

मुझे आज भी वह दिन भली-भांति याद है, जब मैं **निखिलेश्वरानन्द जी** के पास यमुनोत्री के उद्गम स्थल पर बैठा था, उस समय तक स्वामी जी साधना के उच्च सोपान पर चढ़ चुके थे। पूरे शरीर पर एक लंगोट रहती और बर्फ के पहाड़ों पर चढ़ते समय हाथ में एक दण्ड।

दूसरे दिन स्वामी जी का आज्ञा से मुझे वहां से जाना था, यद्यपि मैं स्वामी जी का साथ एक क्षण के लिए भी छोड़ना नहीं चाहता था।

उस समय स्वामी जी जीवन सर्वथा निस्पृह था, मिल जाता तो भोजन कर लेते, अन्य किसी को कुछ कहते नहीं, निस्पृह . . . एकान्त, वीतरागी।

दूसरे दिन वे यमुनोत्री के किनारे खड़े थे, मेरे अनुरोध पर, वे भी मेरे साथ चलने को तैयार हो गए . . . बोले **ला, मेरा दण्ड उठा।**

मेरे मुंह से निकल गया, **दण्ड . . . और आपका!**

उन्होंने एक क्षण मेरी आंखों में झांका बोले . . . **ठीक कहते हो, यह तो आसक्ति है, दण्ड के प्रति कि यह मेरा है, ऐसी आसक्ति क्या काम की?** और कहते-कहते वह दण्ड यमुनोत्री की लहरों में फेंक दिया, ऐसे थे निमुक्त निस्पृह **सन्यासी निखिलेश्वरानन्द जी।**

–योगीराज सुखदेव
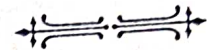
हरिद्वार का कुम्भ

हरिद्वार का कुम्भ। चारों तरफ विशाल जन समूह। टेंटों तम्बुओं, कनातों का विशाल नगर। जहां तक दृष्टि जाती, तम्बू ही तम्बू नजर आते, अचानक कुम्भ में आग लग गई, और उसने कपड़े से बने टैंटों को अपनी विकराल लपटों में घेर लिया, चारों तरफ हाहाकार, क्रन्दन सा मच गया, पर ईश्वर भक्त सद्गृहस्थ रामसुख जी के टेंट में आग का लवलेश तक नहीं था।

कुछ समय पहले ही इस टेंट में **गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द** जी आए थे, बोले— **मुझे आग ही आग नजर आ रही है, मैं तो यहां बैठा हूं, मुझे कुछ खाने को दे।** रामसुख जी की बहू ने उठकर स्टोव पर कड़ाही रखी, पूरियां निकलती गई और गुरुदेव खाते रहे, चारों तरफ आग का भीषण तांडव, पर गुरुदेव शान्त स्थिर, अविचलित।

रामसुख जी ने कहा भी, **गुरुदेव! चारों तरफ आग ही आग है, इस टेंट को भी यह आग थोड़ी देर में लील जाएगी।**

पर गुरुदेव चुप! आश्चर्य की बात यह कि आसपास के सारे टेंट जल कर स्वाहा हो गए, पर यह टेंट सर्वथा अछूता बचा रहा, शाम को छः बजे तक गुरुदेव एक आसन पर बैठ कर कुछ न कुछ खाते रहे और शंकित मन रामसुख का परिवार उन्हें खिलाता रहा। सात बजे जब वे उठे, तो चारों तरफ मरघट की सी शान्ति थी, गुरुदेव उठकर एक तरफ चले गए, न बोले, न कुछ कहा . . . अचानक उस स्थान पर जहां पूज्य गुरुदेव बैठे थे, रामसुख जी का पर पड़ गया . . . और पैर पड़ते ही उस पर फफोले हो आए . . .

सारी आग को तो पूज्य गुरुदेव अपने आसन के नीचे दबाए बैठे थे हजारों लाखों दर्शक इस घटना के साक्षी हैं।

–श्री केशव प्रसाद
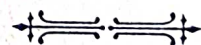
गुरु चरनन महं डेरा

आदि बद्रीनाथ के आगे दिव्यधाम के संस्थापक **स्वामी गिरिजानन्द** अपने-आप में उच्चकोटि के योगी और विद्वान् है, उन्होंने सिद्धियों के क्षेत्र में कुछ नवीन प्रयोग किए हैं और आज

वे हिमालय के श्रेष्ठ योगियों में गिने जाते हैं।

वे मेरे गुरु भाई रहे हैं और **सिद्धाश्रम** में हम दोनों ने साथ ही साथ प्रवेश किया था।

गुरु पूर्णिमा और गुरु चर्चा चलने पर उन्होंने भाव-विभोर होकर कहा मेरा जीवन तो गुरु चरणों में ही लीन है, वे चाहे सन्यासी रूप में रहे या गृहस्थ रूप में, वे चाहे सूक्ष्म शरीर से हमारे साथ हों या सामान्य वेश में दूर हों, इससे मेरे चिन्तन में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि मैं प्रतिक्षण दिव्य दृष्टि के द्वारा उन्हें देखता रहता हूं और इस प्रकार अपनी आंखें तृप्त बनाए रखता हूं।

यों तो गुरु की महिमा गुरु ही जाने, यदि हम उनके ज्ञान, उनके चिन्तन, उनके रहस्य को जान लें तो फिर हम शिष्य ही क्यों रहेंगे? हम स्वयं ही गुरु बन जायंगे, परन्तु मैं उनके गृहस्थ जीवन और गृहस्थ शिष्यों को देखता हूं तो आश्चर्यचकित रह जाता हूं कि ये कैसे गृहस्थ शिष्य हैं, जो होठों से 'गुरु' शब्द का उच्चारण करते हैं, पर हृदय में किसी प्रकार का कोई समर्पण भाव पूर्णता के साथ नहीं होता, प्रारम्भ में उनकी प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर देते हैं, पर स्वार्थ मिटने पर वे मुंह मोड़कर खड़े हो जाते है।

ऐसे शिष्यों और ऐसे वातावरण के बीच भी वे जिस प्रकार से अडिग है, और जिस प्रकार से तिल-तिल कर अपने-आपको जला रहे हैं वह आश्चर्य की बात है, यह तो उसी व्यक्तित्व का धैर्य है कि वह इतने विरोधी वातावरण और प्रबल झंझावातों के बीच भी मुस्कराता रहता है, हम यहां से देखकर विचलित होते हैं, मैं ही नहीं सभी गुरु भाई अधैर्यवान हो उठते हैं, परन्तु उनकी आज्ञा से बंधे हुए हैं, विवश हैं।

और ये गृहस्थ शिष्य उस महान व्यक्ति से बहुत छोटी-छोटी चीजें मांगते है, कोई रोग - मुक्ति की याचना करता है, तो कोई पारस्परिक पति-पत्नी के झगड़ों में समाधान चाहता है, कोई व्यापार में उन्नति चाहता है तो कोई आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना चाहता है, **गंगा के किनारे जाकर भी ये गृहस्थ लोग चुल्लू भर पानी पीकर ही तृप्त हो जाते हैं, मेरे लिए तो यही आश्चर्य की बात है।**

गुरु पूर्णिमा की चर्चा चलने पर उन्हें सिद्धाश्रम की वह गुरु पूर्णिमा याद हो आई, जब **सिद्धयोगा झील** के किनारे स्वामी **श्री निखिलेश्वरानन्द जी** की गुरु वन्दना की थी, वह सिद्धाश्रम की गुरु पूर्णिमा तो अत्यन्त सौभाग्यशाली साधकों को ही देखने को मिलती है— ऐसा कहते-कहते स्वामी जी की आंखें डबडबा आई, वे कहीं किन्हीं और ख्यालों में डूब गए।

-स्वामी ज्ञानानन्द
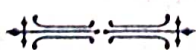
काशी के नीचे काशी

उन दिनों हम काशी में थे और नित्य गंगा स्नान कर कहीं पर पांच-छः घण्टे साधना सम्पन्न करते, उन्हीं दिनों एक महात्मा आए, वे नंग - धड़ंग से थे, दुबला-पतला शरीर मगर बड़ी-बड़ी आंखें और तेजस्वी चेहरा।

उन्हें देखते ही गुरुदेव उठ खड़े हुए और उनका स्वागत सत्कार कर अपने पास बिठा दिया।

हम सब के लिए यह आश्चर्य था, परन्तु कुछ बोले नहीं। गुरुदेव ने हम सब शिष्यों को दूर चले जाने के लिए कहा और उन दोनों में लगभग पौन घण्टे तब बातें होती रहीं। कुछ समय बाद वे महोदय उठ कर चले गए।

हम सब दूर खड़े गंगा के किनारे कनखियों से गुरुदेव और उन महोदय को देख रहे थे। अनुमान कर रहे थे, कि अवश्य ही यह कोई पहुंचा हुआ सिद्ध है तभी गुरुदेव ने उठ कर उनका स्वागत किया है। जब गुरुदेव ने संकेत से हम लोगों को बुलाया तो हम दौड़ते हुए उनके पास बैठ गए।

गुरुदेव ने कहा— ये **सिद्ध सन्त मोहन बाबा** है, और पाताल काशी में रहते हैं।

पाताल काशी? मैंने पूछा, यह कहां है, काशी में तो कोई ऐसा स्थान सुनने को नहीं मिला।

गुरुदेव हंस दिए, बोले— **ऊपर जो काशी बसी हुई तुम देख रहे हो उसी के नीचे भूगर्भ में भी एक पूरी काशी बसी हुई है,** जिसमें सन्त तपस्वी और महात्मा ध्यानस्थ है, असली गंगा तो वहीं पर बहती हैं, और उसके किनारे-किनारे ही उच्चकोटि के सन्त विद्यमान है, मोहन बाबा भी पाताल काशी के ही योगी है।

फिर इसका खुलासा करते हुए गुरुदेव ने कहा— **वहां तक जाने का कोई रास्ता या द्वार नहीं है, अपितु साधना के बल पर ही विश्वनाथ की उस पाताल काशी में पहुंचा जा सकता है,** वह भी ठीक उतनी लम्बी-चौड़ी है, जितनी कि ऊपर काशी बसी हुई है। वहां पर उच्चकोटि के सन्यासी और योगी निरन्तर ध्यानस्थ है। हमारी आंखों के सामने से रहस्य का एक नया पर्दा सरक रहा था, पहली बार सुना था कि पाताल काशी है, जो कि योगियों की सिद्धस्थली है।

बाद में कुछ विशेष साधनाओं के बाद हम कुछ शिष्यों को गुरुदेव उस पाताल काशी में भी ले गए थे। अद्भुत, अलौकिक, अवर्णनीय, तपश्चर्या से पूरित, जहां हजारों- हजारों योगी सन्यासिनियां ध्यानस्थ है, और निरन्तर साधनारत है।

- स्वामी चिद्रूपानन्द

मनोरंजन व ज्ञान का भरपूर खज़ाना

प्रथम सेट की अपूर्व सफलता के कारण छः पुस्तकों के स्थान पर आठ पुस्तकों की द्वितीय श्रृंखला . . .

सौन्दर्य

नयी परिभाषाएं, नयी व्याख्याएं, एक-एक शब्द सरसता में डूबा, मानों शब्दों से ही सौन्दर्य मूर्त रूप में खुद ब खुद ढल रहा हो प्रत्येक लेख अपूर्व मादकता में सराबोर।

तारा साधना

दरिद्रता के अंधकार से तारण देने वाली महाविद्या तारा की सिद्ध साधना पद्धति जिसके आधार पर साधकों ने नित्य प्रातः सिरहाने दो तोला सोना प्राप्त करना स्वयं अनुभव किया ही है।

तंत्र साधनाएं

युग के ही अनुरूप विभिन्न देवी-देवताओं की गोपनीय तांत्रोक्त साधनाओं को लघु कलेवर में पूर्णता से प्रकाशित करने का प्रथम व दुर्लभ अवसर।

जगदम्बा साधना

प्रत्येक शक्ति साधना, महाविद्या साधना अथवा किसी भी तांत्रोक्त साधना को सिद्ध कर लेने की, प्रथम बार में पूर्णता प्राप्त कर लेने की क्रिया, साथ ही मां भगवती जगदम्बा के जाज्वल्य रूप के दर्शन प्राप्त कर लेने का रहस्य भी तो!

सीरिज के

ब . . . ढ़ . . . ते

क . . . द . . . म

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ५/-

पूर्ण जानकारी के लिए

सम्पर्क

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान
डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी,
जोधपुर, (राज.) - ३४२००१
फोनः ०२९१-३२२०९

अथवा

गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव,
पीतमपुरा, नई दिल्ली-११००३४
फोनः ०११-७१८२२४८

शिव साधना

सब कुछ किया किंतु इन औढरदानी देव का रहस्य न जाना, प्रसन्न करने की साधना पद्धति न प्राप्त की तो सब कुछ अधूरा ही रह जाता है क्योंकि जहां शिव है वहीं जीवन की पूर्णता, चैतन्यता, आनंद और निरोगता भी तो है।

उर्वशी साधना

प्रथम सेट में प्रकाशित *'अप्सरा साधना सिद्धि'* को विस्तार से प्रस्तुत करने के पाठकों के विशेष आग्रह के क्रम में एक सजीव पुस्तक। विवरण की अनोखी शैली, गोपनीय आबद्ध प्रयोग के साथ।

हिप्नोटिज्म

सम्मोहन के विशाल विषय को सरलता से लघु कलेवर में समेटने की क्रिया, जिससे साधक को अल्पकाल में ही सम्मोहन का महत्व और विशेष सूत्र मिल सके।

स्वर्ण सिद्धि

कीमियागीरी अर्थात् स्वर्ण निर्माण पद्धति भारत की ही सारे विश्व को देन रही है। इसी को सप्रमाण बताती हुई एक अनोखी पुस्तक।

अरविन्द प्रकाशन, जोधपुर की नवीन प्रस्तुतियां!

लोक परम्पराओं में छुपे हैं कार्य सिद्धि के अचूक उपाय

जहां प्रकृति में स्वरचित अनोखी वस्तुएं मिलती हैं फिर वहीं साधनाओं एवं पौरुष के द्वारा योगियों और तांत्रिकों ने भी ऐसी दुर्लभ वस्तुएं रचीं जिनका प्रभाव व प्रामाणिकता किसी भी प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त वस्तु से कम नहीं है और ऐसी दुर्लभ वस्तुएं लोक - परम्पराओं में सम्मिलित होकर कहीं श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाने लगीं तो कहीं भय की दृष्टि से।

जन साधारण की भाषा में प्रचलित 'टोटका' शब्द आज बहुत श्रद्धा से नहीं लिया जाता लेकिन 'टोटके' का अर्थ है, ऐसे छोटे-छोटे प्रयोग, ऐसी वस्तुएं जो बिना किसी साधन या मंत्र-जप के व्यक्ति को जीवन में आसानी से अनुकूलता देती हों। ऐसी ही दुर्लभ वस्तुओं की जानकारी लोक परम्पराओं से लेकर प्रस्तुत कर रहे हैं हम इस लेख में–

. . . जीवन में सफलता को तुरन्त प्राप्त करने के लिए, किसी भटकाव या लम्बे समय तक अपने-आप का उलझाने से बचाने के लिए . . . यत्र-तत्र बिखरी इन दुर्लभ सामग्रियों का विवरण। ये सामग्रियां अथवा इनके विवरण कहीं एक स्थान पर या किसी एक शास्त्र में लिखे हुए नहीं मिलते वरन् इन्हें तो खोजी प्रकृति के साधु और निरन्तर विचरण करते रहने वाले योगी अपनी स्मृति या संग्रह में सुरक्षित रखते जाते हैं।

ऐसे ही स्रोतों से प्राप्त कुछ एक ये सामग्रियां पाठकों के जीवन में सचमुच ही हलचल मचा देने वाली सिद्ध होंगी।

१. आत्मविश्वास में वृद्धि के लिए– कुंडला

छत्तीसगढ़ के आदिवासी क्षेत्रों में सुपरिचित एक अनोखी वस्तु जिससे आज भी बड़े बुजुर्ग इससे अपरिचित नहीं और पहले के युग में धने जंगलों में शिकार करने के लिए जाते समय प्रत्येक व्यक्ति इसको अपने गले में बांधता ही था जिससे प्राप्त हो सके उसको सुरक्षा चक्र और सुरक्षा से भी अधिक अपने खुद के अन्दर दृढ़ता और बल का ऐसा प्रभाव जिसका मिलाजुला स्वरूप ही होता है व्यक्ति का आत्मविश्वास।

जीवन की **विषम स्थितियों में खुद ही देखा जा सकता है इसका अनोखा, प्रभाव फिर चाहे वह इन्टरव्यू और व्यापारिक वार्तालाप की बात हो** या फिर यों ही जीवन में आ गई झिझक और हड़बड़ा जाने वाली स्थितियों को समाप्त करने की बात।

२. भय का जड़मूल से विनाश होता है– खंग से

इसके तो निर्माण का रहस्य आज तक ही दुर्लभ रहा। क्योंकि पहले इसी के बने पात्रों में राजपुरुषों की सन्तानों को विशिष्ट औषधियों का सेवन कराया जाता था जिससे वे जीवन में तेजस्वी और प्रभावशाली बन सकें। खंग का एक टुकड़ा भी प्राप्त हो जाना जीवन का सौभाग्य है, क्योंकि न तो अब इसके ज्यादा जानकार रहे और न कभी इससे सम्बन्धित रहस्य पन्नों पर स्पष्ट करने की आवश्यकता ही समझी गई।

कैसी भी हीन भावना हो या किसी भी ज्ञात व अज्ञात भय की वजह से जीवन में असन्तुलन आ गया हो तब किसी भी साधना की अपेक्षा खंग का एक टुकड़ा धारण कर लेना अपने आप को भय से मुक्त कर लेना है . . . केवल मानसिक रूप से ही नहीं वरन् वास्तविक रूप से भी क्योंकि खंग होता ही ऐसा प्रभावशाली है।

३. रूप चुराकर दे जाती है – चन्द्रकांत मणि

कब और कहां मिल जाए यह मणि और कैसे कर लिया जाए, इसको पूर्णरूप से सिद्ध, इसका रहस्य तो योगी ही जानते हैं, और प्रत्येक योगी भी नहीं, सचमुच रत्नों का पारखी या फिर जिसे इसे सिद्ध करने का रहस्य ज्ञात हो अन्यथा तो यह मामूली रत्न बनकर रह जाता है। लेकिन जिसकी उंगलियों पर झिलमिला जाए यह रत्न फिर उसमें अनोखी कशिश और लुनाई उतर ही आती है। हल्के पीले रंग का यह अपने नाम के अनुरूप स्त्री या पुरुष में चन्द्रमा सी शीतलता और ऐसी मासूमियत उतार देता है, जो सही अर्थों में सौन्दर्य है . . . बरबस अपनी ओर खींच लेने वाला सौन्दर्य!

४. राज्य भय को दूर करता है – घंटपाश

प्राचीन काल में नाथ योगियों ने एक अद्‌भुत विधान खोज निकाला था जब वे अपने ऊपर होने वाले राज्यभय एवं हस्तक्षेपों से दुखी हो गए, जब वे अपनी नूतन शैलियों के कारण हेय व तिरस्कृत ढंग से देखे जाने लगे और आज भी प्रत्येक नाथ योगी इसे किसी न किसी रूप में अपने शरीर से सम्पर्कित रखता ही है।

युग बदल गया लेकिन उनके द्वारा ढूंढी गई यह अनोखी वस्तु आज भी प्रत्येक राज्य भय की स्थिति में लाभदायक और अचूक सिद्ध होती है। जहां विरोधियों ने किसी मुकदमें में फसा दिया हो या किसी भी प्रकार से कोई राज्यबाधा गले आ पड़ी हो तो इसी अनोखी चमत्कारिक वस्तु का लाभ लेने में सब प्रकार से व्यक्ति को अनुकूलता सिद्ध होती है।

५. कालेन्द्री : स्वप्न में उत्तर बताता है

वास्तव में इसकी खोज बंगाल प्रान्त में की गई। दुर्गम और दल-दल से भरे इलाकों में शिकार पर जाने से पूर्व रात्रि में वहां के आदिवासी और मछुआरे अपने सिरहाने कालेन्द्री का एक टुकड़ा रखकर सोते थे जिससे उन्हें दूसरे दिन के लिए स्वप्न में सही निर्देश मिल सके और इस प्रकार अपने-आप को बचाने का प्रयास करते थे।

स्वप्न में किसी समस्या का हल जानना हो या लॉटरी का नम्बर ज्ञात करने की भावना मन में हो तब भी कालेन्द्री का प्रयोग अनुकूल रहता ही हैं और इसका अनुभव कर व्यक्तियों ने बताया है कि लाटरी के अंक तो यूं दिखते है ज्यों सामने पर्दे पर फिल्म हो।

६. जोगरूपा की ज्योति से पूरा घर जगमगा जाता है

अतृप्त आत्माओं या किन्हीं अन्य दूषित प्रभावों के कारण प्रायः घर में बिना बात झगड़े खड़े हो जाते हैं और उनका उपाय सुलझने की जितनी भी कोशिश की जाए वे सुलझते नहीं क्योंकि उनका मूल कारण तो पकड़ में आता ही नहीं। ऐसी स्थिति में यदि लाल कपड़े में बांधकर जोगरूपा घर के मुख्य दरवाजे पर लटका दिया जाए तो स्वतः ही घर में सुख और शान्ति बनी रहती है। **मधुबनी के इलाकों में आज भी ग्रामीण अपने छप्पर पर इसे लाल कपड़े में बांधकर खोंस कर स्थापित करना आवश्यक समझते हैं।**

७. ज्वर और पीड़ा का अचूक टोटका है – वीर वहूटी

वीर-वहूटी यों तो प्रकृति का उपहार है लेकिन इसी का विशिष्ट प्रयोग इसे रोग नाशक ही बना देता है और तब छोटे-छोटे रोगों के लिए लम्बे उपाय या औषधि लेने की आवश्यकता नहीं रहती। उत्तरी उड़ीसा की घोसियांग नामक जन-जाति अपने अनेक रोगों का इलाज इसी अचूक टोटके की सहायता से आज तक करती आई है। वास्तव में प्रत्येक योगी और सन्यासी अपने साथ वीर-बहूटी के कुछ टुकड़े हमेशा रखता है और उड़ीसा के जानकर गृहस्थ भी अपने पास इसके टुकड़े अवश्य रखते हैं।

ऐसी स्थितियों में जहां ज्वर की समस्या बार-बार आकर घेर लेती हो या कोई शिशु प्रायः रोग ग्रस्त हो जाता हो उसको तो काले कपड़े में बांधकर यह स्थाई रूप से धारण करा देनी चाहिए।

८. केरविणी – व्यापार वृद्धि का परीक्षित उपाय

व्यापार का तात्पर्य केवल दुकान से नहीं होता। जिस रूप में भी आपको आय का साधन हो वह व्यापार ही है। एक प्रकार से प्रत्येक कार्य व्यापार है और उसमें बिना किसी कारण से क्षय होना सूचक है कि या तो आप पर किसी ने **व्यापार बन्द प्रयोग** करवा दिया है अथवा किन्हीं अप्राकृतिक कारणों से आय में वृद्धि रुक गई है। दक्षिणी आन्ध्र प्रदेश जहां पर आज तक तंत्र की काली विद्याएं विद्यमान हैं, वहीं पर इसकी काट भी मिलती है और वह है केरविणी। केरविणी के कुछ दाने लाकर अपने व्यापार स्थल में बिना किसी को बताए स्थापित कर लेना और नित्य कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उनका एक बार दर्शन मात्र कर लेना अपने-आप में सिद्ध और अचूक टोटका है।

छोटे-छोटे टोटकों की संख्या असीमित हैं और विशेष रूप से आदिवासी बहुल क्षेत्रों में यह परम्परा के रूप में सहज ही मिल जाते हैं जिनकी कार्य क्षमता और विश्वसनीयता देखकर हतप्रभ रह जाना पड़ता है। **जहां एक ओर तंत्र का काला पृष्ठ मूठ है वहीं सहज रूप से, तथाकथित रूप से पिछड़ी जन-जातियों और कबीलों के बीच में विद्यमान यह विद्या अपने-आप में अचरज भरे आधुनिक युग में वरदायक प्रभाव की तरह है।**

श्री यंत्र साधना

द्वितीय

दिन मेरे जीवन का अत्यंत सौभाग्यकारक दिन था जिस दिन मैं **"श्री यंत्र साधना"** करने का मन बना ली थी। मैंने यह साधना दीपावली के पंचपर्वो में सम्पन्न की।

साधना का प्रथम दिन सामान्य रहा दूसरे दिन रात भर मैं मंत्र जप करती रही। इसी बीच यदि नींद टूट जाती तो मुझे ऐसा लगता था कि कोई कमरे में चहल कदमी कर रहा है, मैं थोड़ा सहम गई पर गुरुजी श्री श्रीमाली जी का स्मरण कर साहस जुटाती रही। उस रात मुझे ठीक से नींद नहीं आयी। अगले दिन (तीसरे दिन) दीपावली थी। मैं उसी समय पूजा पर बैठ गई। रात के करीब दस बजे मेरे सामने लगी धूपबत्ती स्वतः ही हिलने लगी इसके थोड़ी देर बाद ही ऐसी सुगन्ध आयी जैसी कि मैंने पहले कभी भी महसूस नहीं की थी। ऐसा थोड़े थोड़े समयांतराल पर तीन बार हुआ, मन प्रसन्नता से भर उठा पर नियंत्रण रखते हुए मैं मंत्र जप करती रही। मेरे सामने रखे श्री यंत्र जो कि ताम्रपत्र पर अंकित था उसके नीचे लिखे मंत्र से ट्यूबलाइट का प्रकाश आता प्रतीत हुआ जो कि मंत्र के प्रारम्भ से लेकर अंत तक आकर पुनः प्रारम्भ से आना प्रारम्भ हो जाता।

पांचवें दिन (अंतिम दिन) (१५-११-९३) को मन किसी अन्य कठिन परीक्षा से गुजरने के लिए सशंकित था। शाम के समय मैंने जप प्रारम्भ किया। लगभग साढ़े आठ बजे मेरे मुख से अपने - आप मंत्रोच्चारण होना प्रारम्भ हो गया जो कि कुछ ही समय में जोर-जोर से होने लगा। मैंने मंत्र जप की ध्वनि कम करने की कोशिश की परन्तु असफल रही। मैं जोर-जोर से मंत्रोच्चार जारी रखी, उस दिन आश्चर्यजनक ढंग से दीपक पूर्ण समय तक जलता रहा और देवी के चित्र में पलकें तथा पुतलियां स्पष्ट रूप से चलते हुए मैं पूर्ण समय तक देखी।

साधना सम्पन्न करने के पश्चात् से ही मेरे घर में दिन में दो या तीन बार अद्‌भुत सुगंध व्याप्त हो जाती है। परन्तु गुरुजी व मां की कृपा से अब मेरा शरीर मुझे बहुत हल्का प्रतीत हो रहा है।

अंत में संक्षिप्त रूप से इतना ही कहूंगी कि गुरुजी की असीम अनुकम्पा से सम्पन्न हुई इस साधना के करने से मैं व मेरा परिवार बहुत ही आश्वस्त हैं तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण।

इति

श्रीमती सुशीला सिंह,
मकान न० ५-एफ-८५,
पोस्ट-ओबरा,
जिला-सोनभद्र (उ० प्र०)

इस स्तम्भ के अन्तर्गत कोई भी प्रविष्टि प्रथम पुरस्कार के योग्य नहीं पाई गई। द्वितीय पुरस्कार के रूप में श्रीमती सुशीला सिंह को एवं तृतीय पुरस्कार के रूप में श्री वीरेन्द्र धामा को पुरस्कार की धनराशि प्रेषित की जा रही है।

- सहा० सम्पादक

जीवन रक्षा

तृतीय

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे ऐसे परम पूज्य गुरुदेव का शिष्य बनने का अवसर मिला है। पिछले वर्ष २८ मई १९९३ में पूज्य गुरुदेव का वरद हस्त मुझ पर हुआ जब गुरुदेव ने मुझे शक्तिपात कर अपना शिष्य बनाया था एवं मेरे जीवन की डोर को अपने हाथों में संभाल लिया था जिन्होंने मेरे इस तुच्छ जीवन का भार अपने ऊपर संभाल लिया है उससे मैं इस ऋण से कभी उऋण तो हो नहीं सकता है। परम पूज्य गुरुदेव की अनुकम्पा से मुझे एक बार जीवनदान भी मिल चुका है। एक बार जब मैं अपनी फियेट कार में मेरठ शहर से अपने गांव बिनौली जा रहा था उस समय गाड़ी में पूज्य गुरुदेव से सम्बन्धित **"निखिलेश्वरानन्द स्तवन"** का रिकार्ड बज रहा था। गाड़ी बड़ी स्पीड़ से दौड़ रही थी कि अचानक मुझे स्पष्ट कि एकदम गाड़ी रोको। उस समय गाड़ी में मेरे अलावा और कोई नहीं था। मैंने तुरन्त ब्रैक लगाए ठीक उसी समय अचानक गाड़ी का बोनट खुल गया एवं शीशे से टकराया जिससे आगे देख पाना मुश्किल हो गया, परन्तु तब तक गाड़ी रुक चुकी थी, यदि ब्रेक न लगे होते तो बोनट कहीं पर भी रास्ते में इस प्रकार उठकर एक भयंकर दुर्घटना हो सकती थी, परन्तु होती भी क्यों जब गुरुदेव का वरद हस्त मेरे ऊपर है। मैं मिल में सर्विस में हूं। मेरी इच्छा है कि गुरुदेव कब मुझे समय दे कि मैं सपरिवार श्री गुरु चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं। आशा है गुरुदेव मेरे सभी अपराधों को माफ कर देंगे।

आपका शिष्य
वीरेन्द्र धामा,
गांव-बिनौली, डा०-बिनौली,
जिला-मेरठ, उ० प्र०।

हीरक जयन्ती विशेषांक : दीक्षा व सामग्री परिशिष्ट

पत्रिका- पाठकों की विशेष सुविधा को ध्यान में रखते हुए, पत्रिका में प्रकाशित प्रत्येक साधना में संबंधित सामग्री की व्यवस्था करने का अथक प्रयास किया जाता है, दुर्लभ एवं कठिनाई से प्राप्त होने वाली सामग्री को उचित न्यौछावर पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाती है, तथा साधना से संबंधित दीक्षा की विशेष व्यवस्था भी की जाती है।

सामग्री	पृष्ठ	न्यौछावर
काली हकीक माला	५६	१५०/-
धूमावती यंत्र	१६	२४०/-
गुरु चरण पादुका	३३	१२०/-
छह शक्ति चक्र	३३	१५०/-
शुद्ध स्फटिक माला	३३	३००/-
ग्यारह सौभाग्य फल	३५	१२१/-
मूंगे की माला	३५	१५०/-
कमल गट्टे की माला	३५	१५०/-
धनदा देवी का चित्र	३५	२१/-
तांत्रोक्त शिव यंत्र	४३	२६०/-
महाप्रभ	४३	२१०/-
रुद्राक्ष माला	४३	३००/-
बटुक भैरव यंत्र	५७	३००/-
वास्तु देव यंत्र	६६	२४०/-
वास्तु देव मूर्ति	६६	२४०/-
६४ वास्तु चक्र	६६	२४०/-
स्फटिक मणि माला	७१	३५०/-
कुण्डला	७७	२१०/-
खंग	७७	१५०/-
चन्द्र कांत मणि	७८	२४०/-
घंट पाश	७८	२४०/-
कालेन्द्री	७८	१५०/-
जोगरुपा	७८	१५०/-
वीर बहूटी	७८	१२०/-
केरविणी	७८	१५०/-

दीक्षा

दीक्षा	पृष्ठ	न्यौछावर
जीव चैतन्य दीक्षा	६०	३०००/-
बन्ध मोक्ष दीक्षा	६०	३०००/-
भोग वरदा दीक्षा	६०	२१००/-
कामाक्षी दीक्षा	६०	१५००/-
स्फुलिंग दीक्षा	६०	१५००/-
पारदेश्वरी दीक्षा	६०	२१००/-
महालक्ष्मी चैतन्य दीक्षा	६०	५१००/-
गुरु आत्म-एक्य दीक्षा	६०	१५००/-
महाभैरव दीक्षा	६०	३०००/-
कामरूपेण दीक्षा	६०	३०००/-
आयु आयुष्य दीक्षा	६०	३०००/-
ललिताम्बा दीक्षा	६०	२१००/-
प्रबल लामा वशीकरण दीक्षा	६०	३०००/-
सहस्रार जागरण दीक्षा	६०	५०००/-
ब्रह्माण्ड भेदन दीक्षा	६०	५०००/-
सकल लोकगमन दीक्षा	६०	५०००/-
त्रिवर्ग दीक्षा	६०	२१००/-
परकाया प्रवेश दीक्षा	६०	५१००/-
दूर - श्रवण दीक्षा	६०	३५००/-
दूर सम्प्रेषण दीक्षा	६०	३५००/-
दूर-दृश्य दीक्षा	६०	३५००/-
ज्ञान दीक्षा		६००/-
जीवन मार्ग दीक्षा		६००/-
यक्षिणी प्रत्यक्ष दीक्षा		२१००/-
अप्सरा प्रत्यक्ष दीक्षा		२१००/-
सुलोचना प्रिया रूपेण		[illegible]
वश्यं प्रत्यक्ष दीक्षा		२१००/-
कुण्डली जागरण दीक्षा		३१००/-
चक्र जागरण दीक्षा		३०००/-
शक्तिपात दीक्षा		२१००/-
हृदयस्थ गुरु धारण प्रत्यक्ष दीक्षा		२१००/-
महालक्ष्मी दीक्षा		५१००/-
ऋण मुक्ति दीक्षा		५१००/-
गणेश सिद्धि दीक्षा		३१००/-
आकस्मिक धन प्राप्ति दीक्षा		३५००/-
रोग मुक्ति दीक्षा		२१००/-
धनवन्तरी दीक्षा		२१००/-
मनोवांछित कार्य सिद्धि दीक्षा		३१००/-
वायुगमन दीक्षा		६०००/-
टेलीपैथी दीक्षा		३०००/-

चेक स्वीकार्य नहीं होंगे। ड्राफ्ट किसी भी बैंक का हो, वह **"मंत्र शक्ति केन्द्र"** के नाम से बना हो, जो जोधपुर में देय हो।

मनिऑर्डर या ड्राफ्ट भेजने का पताः-

मंत्र शक्ति केन्द्र, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी, जोधपुर-३४२००१ (राज.), टेलीफोन : ०२९१-३२२०६

दीक्षा के लिए पहले से ही समय एवं स्थान तय कर अनुमति लेकर ही आएं

३०६, कोहाट इन्क्लेव, नई दिल्ली, टेलीफोन : ०११-७१८२२४८

वर्ष १४ **अंक ४** **अप्रैल ९४**

प्रधान संपादक - नन्दकिशोर श्रीमाली

सह सम्पादक मण्डल - डॉ. श्यामल कुमार बनर्जी, सुभाष शर्मा, गुरुसेवक, गणेश वटाणी, नागजी भाई

संयोजक - कैलाश चन्द्र श्रीमाली, **वित्तीय सलाहकार -** अरविन्द श्रीमाली

सम्पर्क

मंत्र-तंत्र-यंत्र विज्ञान, डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाई कोर्ट कॉलोनी, जोधपुर - ३४२००१ (राज.), फोन : ०२९१ - ३२२०६

गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव, नई दिल्ली - ११००३४, फोन : ०११-७१८२२४८, फेक्स : ०११-७१८६७००

प्रकाशक एवं स्वामित्व श्री कैलाश चन्द्र श्रीमाली द्वारा नव शक्ति इन्डस्ट्रीज, C. १३, न्यू रोशनपुरा, नजफगढ़ दिल्ली से मुद्रित तथा गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली से प्रकाशित।

गौरवशाली हिन्दी
मासिक पत्रिका

Introducing on the occasion of the Diamond Jubilee celebrations of Dr. Narayan Dutt Shrimali's birthday anniversary at Allahabad on 21st April

English Edition

Yes, now we are introducing the English Edition of **Mantra Tantra Yantra Vigyan** from **April 21'st 1994.** After a great success of this magazine in Hindi we have decided to reach people of different languages and nations, who have been demanding for a magazine in their language for a long time.

You can get the English version from any book-stall all over India or you may write to us.

DIAMOND
JUBLEE
CELEBRATION

ALLAHABAD
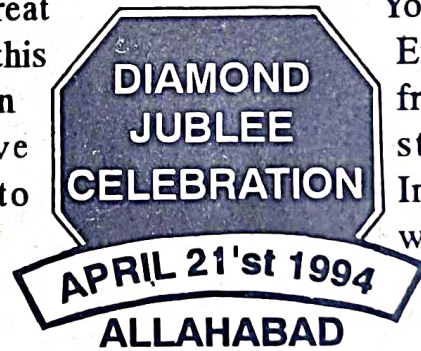
Mantra Tantra Yantra Vigyan,
Dr. Shrimali Marg, High Court Colony, Jodhpur (Raj.),
Ph. : 0291-32209, 32010
Gurudham, 306, Kohat Enclave, Pitampura, New Delhi-34,
Ph.:011-7182248, Fax : 011-7186700

यही तो उत्सव है!

और यह उत्सव प्रारम्भ हो रहा है
पूज्यपाद गुरुदेव के इस हीरक जयन्ती वर्ष में
साकार रूप लेता हुआ
पूज्यपाद गुरुदेव के वरदायक प्रभाव से युक्त
इन दुर्लभ दीक्षाओं के द्वारा, जिनमें से कुछ दीक्षाएं
तो केवल इस वर्ष विशेष को ध्यान में रखकर ही प्रदान की जा रही है -

२०.०५.६४ ज्ञान दीक्षा, जीवन मार्ग दीक्षा

जीवन की श्रेष्ठता का प्रारम्भ, इन प्रारम्भिक दीक्षाओं के द्वारा

२१.०५.६४ यक्षिणी प्रत्यक्ष दीक्षा, अप्सरा प्रत्यक्ष दीक्षा, सुलोचना प्रिया रूपेण वश्यं प्रत्यक्ष दीक्षा

ऐसा क्रम जो न पूर्व में प्रदान किया गया न भविष्य में पुनः प्रदान किए जाने की सम्भावना है।

२२.०५.६४ कुण्डली जागरण दीक्षा, चक्र जागरण दीक्षा, शक्तिपात दीक्षा, हृदयस्थ गुरु धारण प्रत्यक्ष दीक्षा

जीवन में आध्यात्मिक श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेने की दुर्लभ दीक्षाएं,
पूज्य गुरुदेव से प्राणों की एकाकारिता कर लेने का रहस्य

२३.०५.६४ महालक्ष्मी दीक्षा, ऋण मुक्ति दीक्षा, गणेश सिद्धि दीक्षा, आकस्मिक धन प्राप्ति दीक्षा

सुख--सौभाग्य, सम्पन्नता और सभी प्रकार से ऐश्वर्यवान बनने की
सरलतम, विधि, पूज्य गुरुदेव की तपश्चर्या से जीवन की समस्याओं का निराकरण

२४.०५.६४ रोग मुक्ति दीक्षा, धनवन्तरी दीक्षा

किसी रोग विशेष से पीड़ित व्यक्ति के लिए एक महत्वपूर्ण दिवस
साथ ही स्वस्थ व्यक्ति भी इन दीक्षाओं से सुरक्षा चक्र प्राप्त कर सकता है।

२५.०५.६४ मनोवांछित कार्य सिद्धि दीक्षा, वायुगमन दीक्षा, टेलीपैथी दीक्षा(अर्थात् दूसरों के मन की बात जानने की दीक्षा)

विशिष्ट साधनाओं और सिद्धियों को प्राप्त करने का दिवस, तीन महत्वपूर्ण दीक्षाएं

सम्पर्क

गुरुधाम, ३०६, कोहाट एन्क्लेव, पीतमपुरा, नई दिल्ली-११००३४, फोन-०११-७१८२२४८

नोट : ये दीक्षाएं पूज्यपाद गुरुदेव केवल "गुरुधाम" दिल्ली में ही उपरोक्त दिवसों पर प्रदान करेंगे।